

जेएनयू प्रकरण :

बैनकाब हुए वामपंथी



जेएनयू प्रकरण : बेनकाब हुए वामपंथी

संकलनकर्ता
शिवानन्द द्विवेदी

Cover Design & Layout
Vikas Saini



डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी
रिसर्च फाउंडेशन

अनुक्रमणिका

क्र.सं	लेख	पेज न.
01	प्राक्कथन	5
02	एक बार फिर बेनकाब वामपंथी - अनंत विजय	7
03	देश टूट गया तो जेएनयू कैसे बचेगा? - एन.के सिंह	10
04	जेएनयू में सफाई अभियान की जरूरत है - अमिताभ सिन्हा	12
05	बौद्धिक बेईमानी का तमाशा - राजीव सचान	13
06	घातक राजनीति का अड्डा - शंकर शरण	17
07	लक्ष्मण रेखा का उलंघन - स्वप्न दासगुप्ता	19
08	जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय से उठते सवाल - उमेश चतुर्वेदी	24
09	जनता से बेघर वामपंथियों का रैन-बसेरा है जेएनयू - शिवानन्द द्विवेदी	26
10	जेएनयू में क्यों उठता है अफजल गुरु का नाम? - आर. के सिन्हा	29
11	आखिर अफजल से किनारा क्यों कर रहे हैं कन्हैया-समर्थक? - रोहित श्रीवास्तव	31
12	जेएनयू को भारत-विरोधी अड्डा बनाते रहे हैं वामपंथी! - मनीष कुमार	32
13	वामपंथी विचारधारा का स्याह चेहरा - पीयूष द्विवेदी	35
14	मुख्यधारा की राजनीति का थियेटर बना जेएनयू - प्रमोद जोशी	37
15	जेएनयू के बवाल पर सियासत	40
16	पथ से भटका वामपंथ - अभिनव प्रकाश	41
17	March of the anti-India brigade - Anirban Ganguly	45
18	JNU row : Expose those who want Bharat ki barbadi - Gaurav C Sawant	48
19	JNU: Leftist's always had an anti-national character - Rashmi Das	51

क्या है जेएनयू विवाद?



जेएनयू में वामपंथी संगठन डेमोक्रेटिक स्टूडेंट यूनियन की तरफ से अफजल गुरु की बरसी पर एक कार्यक्रम आयोजित किया गया था। सांस्कृतिक संध्या के नाम पर आयोजित इस कार्यक्रम में कश्मीर की आजादी और अफजल गुरु के समर्थन में चर्चा का अंदेशा जताया गया। लिहाजा विश्वविद्यालय प्रशासन द्वारा पूरी जानकारी मिलने के बाद कार्यक्रम नहीं आयोजित करने का आदेश दिया गया। लेकिन विश्वविद्यालय प्रशासन से बेपरवाह वो कार्यक्रम हुआ और उसमें देश विरोधी नारे लगे। वहां पर सुप्रीम कोर्ट के फैसलों पर सवाल उठाते हुए अभद्र भाषा का प्रयोग किया गया। काश्मीर की आजादी जैसी बातें की गयी। भारत के सौ टुकड़े करने जैसी बात की गयी। लिहाजा पुलिस ने अब साक्ष्यों के आधार पर कार्रवाई की है।

प्राक्कथन

जे एनयू देश के अग्रणी शिक्षण संस्थानों में से एक है। इसकी गिनती देश के प्रतिष्ठित संस्थानों में की जाती है। लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि देश विरोधी विचारधारा के वाहक चंद मुट्टी भर लोगों की वजह से आज जेएनयू विवादों में है। वामपंथी विचारधारा के छात्र संगठनों से जुड़े छात्रों द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायलय से फांसी की सजा पा चुके अफजल गुरु के समर्थन में कार्यक्रम किया जाना एवं भारत के सौ टुकड़े करने वाला नारा लगाने के बाद जेएनयू का विवाद गहरा गया है। हालांकि वामपंथी विचारधारा वाले छात्र संगठनों द्वारा पहले भी ऐसा किया जाता रहा है। लेकिन उस दौरान इन देश विरोधी गतिविधियों पर संज्ञान नहीं लिया जाता था। अब संज्ञान लिया गया है। वामपंथी लफाजियों का कुतर्क यही है कि पहले अभिव्यक्ति को चरमपंथ की हद से पार ले जाओ और जब उसपर कार्यवाही की जाय तो उसे अभिव्यक्ति एवं लोकतंत्र पर खतरा बताने का रोना रोवो। यही स्थिति कमोबेस आज भी है। हालांकि अब कानून व्यवस्था ने पूरे मामले को संज्ञान में लिया है। इसमें कोई शक नहीं कि इतिहास में हुई योजनाबद्ध राजनीति की वजह से जेएनयू में वामपंथी विचारधारा का वर्चस्व रहा है। वहां नियुक्तियों से लेकर दाखिले तक पर एक खास विचारधारा के झुकाव का आरोप लगता रहा है। ये आरोप लगने की पुख्ता वजहें भी हैं। लेकिन इस वजह से किसी संस्थान की प्रासंगिकता को सवाल के घेरे में नहीं खड़ा किया जा सकता है। जेएनयू को लेकर यह विवाद बिलकुल नहीं है कि कोई इसकी प्रासंगिकता अथवा इसके अस्तित्व पर सवाल उठाये। सवाल इसपर होना चाहिए कि जेएनयू को किसी खास विचारधारा के चंगुल से मुक्त करके इसे शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी कैसे बनाया जाय? इस जेएनयू ने बहुत सारे अच्छे लोग दिए हैं। लेकिन वर्तमान की कुछ घटनाओं एवं चंद लोगों द्वारा वैचारिक आग्रह की वजह से किये गये .त्यों ने एकबार फिर जेएनयू जैसे शिक्षा के मन्दिर की पवित्रता को कलंकित किया है। भारत विरोधी नारे, एक सजा प्राप्त आतंकवादी का समर्थन, उस कैम्पस से होना जो शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी स्थान रखता है, कहीं न कहीं चिंतित करने वाला है।

हालांकि इस पूरे विवाद के बाद सोशल मीडिया पर #shutdownJNU को हैशटैग चला और उसी हैशटैग के बहाने यह दुष्प्रचार करने का भी प्रयास किया गया कि सरकार जेएनयू के खिलाफ है। जबकि ये कोरा झूठ है। सरकार सुधारों की पक्षधर है। सरकार संविधान और देश की अखंडता के प्रति जवाबदेह है। अगर किसी शैक्षणिक संस्थान में आतंकवादियों के समर्थन में नारे लगेंगे और भारत के सौ टुकड़े करने की बात की एक कार्यक्रम में की जायेगी तो इसे अभिव्यक्ति की आजादी का चोला पहनाकर छिपाया नहीं जा सकता। देश की समप्रभुता, इसकी अखंडता और इसके प्रति नागरिक समर्पण की भावना ही देशप्रेम का मूल तत्व है।

लोकतंत्र का कोई भी महडल कम से कम देश के खिलाफ जाकर अभिव्यक्ति की आजादी को स्वीकार नहीं करेगा। चूँकि यह प्रमाणित है कि वर्ष २००४ में छात्र परिषद की बैठक में एक प्रस्ताव आया जिसमें चाईना द्वारा अरुणाचल को अपने हिस्से में दिखाने की निंदा करने का प्रस्ताव रखा गया था। तब सभी वामपंथी छात्र संगठनों ने उस निंदा प्रस्ताव के खिलाफ में वोटिंग करके उस प्रस्ताव को ही पारित नहीं होने दिया। अर्थात् कहमरेड छात्र नेता अरुणाचल को चीन का हिस्सा मानते हैं! आज काश्मीर को भारत से आजाद करने की बात करते हैं! भला और कितने तथ्य चाहिए ये साबित करने के लिए कि इन संगठनों का उद्देश्य ही भारत और राज्य विरोधी गतिविधियों को अंजाम देना है? क्या अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर हम किसी को भी दंतेवाड़ा में मारे गये ७६ सीआरपीएफ के जवानों की मौत को सेलीब्रेट करने की छूट दे सकते हैं? नहीं दे सकते। हालांकि लोकतंत्र की बात वामपंथी तभी करते हैं जब ये सत्ताच्युत हों। सत्ता में होने पर ये भयंकर कम्युनिस्ट तानशाही का महडल अपनाते हैं जहाँ न लोकतंत्र होता है और न अभिव्यक्ति की आजादी। इसी मूल लक्षण की वजह से यह विचारधारा अपने शुरुआती दिनों में ही खारिज हो गयी।

जेएनयू का सच, नाम से इस संकलन को करने का उद्देश्य सिर्फ यही है कि इस विषय पर वामपंथियों के फैलाए अफवाहों के खिलाफ लोगों को बताया जाय और इस विषय पर विभिन्न मंचों पर प्रकाशित सामग्री को एक जगह संकलित किया जाय। हम पूरी मजबूती से यह कहना चाहते हैं कि आज जब राजनीतिक कारणों से जेएनयू को वामपंथियों द्वारा बदनाम किया जा रहा है, तो हम देश को यह सच बताएं कि जेएनयू बुरा नहीं है बल्कि जेएनयू में कुछ बुरे तत्व वर्षों से इस संस्थान पर काबिज होकर इसकी छवि खराब करने में लगे हैं। वो आज भी अपने मंसूबों को साधने में लगे हैं लेकिन जबतक इस देश में विद्यालय को शिक्षा का मन्दिर मानने की परम्परा है, वे अपने मंसूबों में कामयाब नहीं होने वाले। इस संकलन में हमने जिन-जिन अखबारों में प्रकाशित लेखों को लिया है, उनका आभार व्यक्त करते हैं। जिन लेखकों का लेख लिया है उनका भी आभार व्यक्त करते हैं। श्यामाप्रसाद मुखर्जी फाउंडेशन की तरफ से सभी का पुनः आभार।

संकलनकर्ता

शिवानन्द द्विवेदी

डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी फाउंडेशन

एक बार फिर बेनकाब वामपंथी

- अनंत विजय

दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में आतंकवादी अफजल गुरु को लेकर किए गए एक सेमिनार ने मार्क्सवादियों के मंसूबों को एक बार फिर से उधाड़ कर रख दिया है। वामपंथियों का गढ़ माने जाने वाले जवाहरलाल नेहरू युनिवर्सिटी में आतंकवादी अफजल गुरु को फांसी पर लटकाए जाने को विषय बनाकर एक सेमिनार का आयोजन किया गया जिसमें भारत विरोधी नारे लगाए गए। इसके अलावा वहां आजाद कश्मीर के पक्ष में भी जमकर नारेबाजी हुई। खबर आने के तीन दिन बाद दिल्ली पुलिस नींद से जागी और धर-पकड़ शुरू हुई और युनिवर्सिटी के छात्र संघ के अध्यक्ष को गिरफ्तार किया गया। इसके अलावा दिल्ली के प्रेस क्लब में भी इसी तरह की एक गोष्ठी हुई जिसमें भारत विरोधी नारे लगे। यहां भी केंद्र में अफजल गुरु ही था। उसके अलावा कश्मीर में भी अफजल गुरु के नाम पर कार्यक्रम आदि हुए जहां आजाद कश्मीर की बात की गई और भारत विरोधी नारे लगे। कश्मीर में तो पहले भी भाड़े के आतंकवादियों ने इस तरह की हरकतें की हैं, लेकिन चिंता की बात है कि इस तरह के वाक्यात कश्मीर से निकलकर दिल्ली तक पहुंच गए हैं। क्या इन आयोजनों को कोई एक सूत्र संचालित कर रहा है। क्या इसके पीछे कोई बड़ी साजिश है? क्या इस तरह के आयोजनों की आड़ में भारत के खिलाफ लोगों को भड़काने की गहरी साजिश रची जा रही है। जांच एजेंसियों को इस बात की भी पड़ताल करनी चाहिए। यह पड़ताल इसलिए भी आवश्यक है कि जेएनयू में जिस तरह से अफजल गुरु और कश्मीर की आजादी के समर्थन में नारे लगे उसके बाद पाकिस्तान में बैठे आतंकी सरगना हाफिज सईद के नाम से एक ट्वीट भी सामने आया जिसमें इसका समर्थन किया गया। इस बात का पता लगना भी आवश्यक है कि इन कार्यक्रमों की फंडिंग कहां से हो रही है।

इस तरह के आयोजनों से जुड़े तमाम लोगों के अतीत को भी खंगालने की आवश्यकता है। इनमें से कई लोग तो वो भी हैं जिन्होंने भारत के असहिष्णु होने की आवाज उठाई थी। प्रेस क्लब के सेमिनार हॉल की बुकिंग करवाने वाले अली जावेद तो साहित्य अकादमी के बाहर जुलूस में भी दिखे थे। इन सारे सूत्रों को मिलाकर जांच की जानी चाहिए कि क्या भारत या भारत सरकार को बदनाम करने के लिए कोई संगठन या गुप सक्रिय तो नहीं है। क्या कोई सरगना कहीं दूर बैठकर इन सारे कार्यक्रमों को हवा तो नहीं दे रहा है। पड़ताल इस बात की भी होनी चाहिए कि जब से गैर सरकारी संगठनों की फंडिंग पर भारत सरकार ने सख्ती दिखाई है तब से ही इस तरह के वाक्यात क्यों सामने आ रहे हैं। यह पूरा मसला हिंदू या मुसलमान का नहीं है, बल्कि ये मामला राष्ट्रवादी और देशद्रोहियों के बीच का है। जेएनयू में आतंकवादी अफजल गुरु के यूडिशियल किलिंग के नाम पर जिस तरह से भारत के खिलाफ

जंग की बातें की गईं उसको अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का कवच नहीं पहनाया जा सकता है। हमारा संविधान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी जरूर देता है, लेकिन वही संविधान इस अधिकार की सीमा भी तय करता है। किसी को भी, मतलब किसी को भी, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर देश के खिलाफ बगावत के लिए उकसाने या उसके लिए माहौल बनाने की इजाजत नहीं दी जा सकती है। उन लोगों की मंशा पर भी सवाल खड़े किए जाने चाहिए जो इसको अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से जोड़कर देखने की कोशिश कर रहे हैं। देशद्रोहियों को देशद्रोही कहना ही होगा। भारत की बर्बादी के नारों के समर्थन में किसी तरह की बात करने वालों को भी देशद्रोहियों की श्रेणी में रखना ही होगा। वो लाख चीखें, लेकिन उनके नापाक मंसूबों को बेनकाब करने का वक्त आ गया है। इसको जेएनयू की अस्मिता और गौरवशाली अतीत से जोड़कर देखने वाले भी सामने आने शुरू हो गए हैं।

छात्र संघ के अध्यक्ष की गिरफ्तारी और युनिवर्सिटी कैंपस में पुलिस के प्रवेश को लेकर भी बयानबाजी शुरू हो गई है। ऐसा करने वाले ललबबुआओं को ये समझना होगा कि देश से बड़ा कोई संस्थान नहीं होता और जहां देश की बर्बादी की बात की जाए वहां पुलिस के जाने से रोकना भी देशद्रोह है। यह अच्छी बात है कि वामपंथियों ने इस बार जेएनयू में जो हुआ उसकी निंदा की, परंतु उन्होंने उस निंदा के साथ लेकिन शब्द जोड़कर अपनी राजनीति को बढ़ाने की भी कोशिश की। वो जेएनयू के बारे में या उसके अतीत के बारे में इस तरह की बातें कर रहे हैं जैसे कि वो उनकी मिल्कियत रही हो और अपनी मिल्कियत पर शासन के दौरान जो अच्छे काम किए गए उसका इशतेहार चस्पां कर रहे हों। अतीत में की गई कथित अछाई की आड़ में मिल्कियत पर आए खतरे के लिए बुक्का फाड़कर रो रहे हों। बजाय इस बात के उनको देशद्रोहियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई और जांच की मांग करनी चाहिए थी।

वामपंथियों की आस्था दरअसल कभी राष्ट्र में कभी रही ही नहीं। एक छोटा सा उदाहरण। हमारे देश में सक्रिय राजनीतिक पार्टियों के नाम देखें। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, भारतीय राष्ट्रीय लोकदल आदि, लेकिन जरा वामपंथी पार्टियों के नाम पर नजर डालें। भारत की कम्युनिस्ट पार्टी, भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सपवादी)। ये क्यों? क्योंकि इनको भारत से या किसी भी राष्ट्र से कुछ लेना-देना नहीं है। ये खुद को भारत में काम करने वाली कम्युनिस्ट पार्टी मानती हैं। राष्ट्रवाद इनके सिद्धांतों में है ही नहीं। उन्नीस सौ बासठ में जब भारत और चीन में युद्ध हुआ था तब भी वामपंथियों ने ये प्रचारित किया था कि बुजरुआ नेहरू ही हमलावर थे। १९६२ का प्रसंग आते ही अब भी वामपंथी खामोश हो जाते हैं। चीन को दोष देना उनके बूते से बाहर है। सिद्धांत से तो है ही। कम्युनिस्टों को आपसी बहस आदि में राष्ट्रवादी शब्द अपमानजनक लगता रहा है, वो लोग राष्ट्रवाद को दोष मानते हैं या कालांतर में उन्होंने राष्ट्रवाद को सांप्रदायिकता से जोड़ दिया। उनके आका मार्क्स भी मानते थे कि मजदूरों का कोई देश नहीं होता और जब देश ही नहीं होता तो देश भक्ति या राष्ट्रभक्ति उनके लिए छद्म या छलावा है। यहां यह बताना जरूरी है कि लेनिन ने भी १९१६ में कोमिंटर्न यानी कम्युनिस्ट इंटरनेशनल बनाया था, क्योंकि तब उनका मानना था कि यूरोप के कम्युनिस्ट अपने पथ से भटक गए हैं। जेएनयू के मामले में भी कम्युनिस्टों का रवैया कुछ उसी तरह का रहा

है। कम्युनिस्ट हमेशा से भारत को देश नहीं, बल्कि कई राष्ट्रीयताओं का झुंड मानते रहे हैं। यहां तक कि पश्चिम बंगाल सरकार में मंत्री रहे अशोक मित्र ने भी कश्मीर की आजादी को लेकर एक अंग्रेजी अखबार में लेख लिखा था। हम अगर इस बात पर गहराई से विचार करें तो इस नतीजे पर पहुंच सकते हैं कि राष्ट्रवाद में निष्ठा नहीं होने की वजह से ही कम्युनिस्टों का पूरी दुनिया में ये हथ्र हुआ है और वो हाशिए पर चले गए। अब भी वो मार्क्सवाद के रोमांटिसिम में जी रहे हैं और दुनिया के एक होने का सपना देख रहे हैं, लेकिन इस सपने को पूरा करने के लिए वो ये मानते हैं कि द पॉवर ग्राउंड आउट ऑफ द बैरल ऑफ अ गन। तो यह बात साफ है कि कम्युनिस्ट पूरी दुनिया में सत्ता हासिल करने के लिए तमाम तरह के षड्यंत्र आदि में लिप्त रहे हैं और अब भी कोशिश करते रहे हैं।

राष्ट्रवाद भारत की आजादी की लड़ाई लड़ने वाली कांग्रेस पार्टी के खाते में था, लेकिन वामपंथियों के प्रभाव में धीरे-धीरे उन्होंने राष्ट्रवाद को प्लेफ्ट में सजाकर भारतीय जनता पार्टी को सौंप दिया। कांग्रेस हमेशा से लेफ्ट टू सेंटर विचारधारा की पोषक रही है। जिस पार्टी ने आजादी की लड़ाई में देश की अगुवाई की आज उसके हाथ से राष्ट्रवाद का मुद्दा निकल गया है। कांग्रेस पार्टी को इस बात पर आत्ममंथन करना होगा कि ऐसा क्योंकर हुआ? भारत में आतंकवादियों के पक्ष में एकजुट होने वाले लोग भारत की बर्बादी का दिवास्वप्न भले ही देख रहे हों, लेकिन उनको ये समझना होगा कि हमारा महान देश किसी विचारधारा का या किसी वाद या संप्रदाय का मोहताज नहीं है इसके सहिष्णु नागरिक ही इसकी ताकत हैं। भारत की बर्बादी का सपना देखने वालों का हथ्र पूरी दुनिया ने देखा है। जो पाकिस्तान दिन-रात भारत का सपना देखता है वहां की हालत देख लीजिए। भारत से अलग होने के बाद वो एक बार फिर से टूटा, आतंक को पनाह देकर भारत को बर्बाद करने का सपना देखने वाला पाकिस्तान आज खुद बर्बादी के वालामुखी पर खड़ा है।

हमारे देश की बहुलता को बदनाम करने वाले लोग इतिहास के साथ दफन होते चले गए और भारत आज भी सीना ताने खड़ा है। हां इतना अवश्य करना चाहिए कि भारत की सरजमीं पर कोई अगर इसको बर्बाद करने का सपना देखे तो उसको उसकी सही जगह पर पहुंचा देना चाहिए।

○

१५ फरवरी- नई दुनिया

देश टूट गया तो जेएनयू कैसे बचेगा?

- एन.के सिंह

जे एनयू के कुछ छात्रों द्वारा खुलेआम लगाए गए भारत विरोधी और पाकिस्तान समर्थक नारे देश की अखंडता और संप्रभुता के लिए खतरनाक हैं। कश्मीर में कुछ युवाओं द्वारा राज्य के श्रीनगर या कुपवाड़ा में भारत विरोधी नारे लगाना और देश की राजधानी के केंद्रीय विश्वविद्यालय परिसर में खुलेआम समूह बनाकर ऐसे नारे लगाना, दोनों में गुणात्मक फर्क है। पहली घटना का कारण पिछले ६८ साल से कुछ किलोमीटर दूर बैठे पाकिस्तान का नापाक मंसूबा रहा है लेकिन देश की राजधानी के प्रमुख विश्वविद्यालय में हुई घटना का गलत संदेश देश और वैश्विक स्तर पर जाता है, जिसे किसी संप्रभु राज्य को बर्दाश्त नहीं करना चाहिए। जेएनयू की घटना ने अब यह जरूरी कर दिया है कि भारत सॉट स्टेट की अपनी छवि तत्काल खत्म करे, खासकर आईएसआईएस सरीखे संगठनों के मंसूबों के मद्देनजर। अगर इससे अप्रतिम सख्ती से नहीं निपटा गया तो देश में विघटनकारी शक्तियों को बढ़ावा तो मिलेगा ही, पूरी दुनिया में संदेश जाएगा कि भारत में राज्य शक्ति की क्षमता घटी है और संप्रभुता पर प्रश्नचिह्न लग जाएगा।

प्रश्न यह नहीं है कि जो गिरफ्तार किया गया वह अपराध में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से था या नहीं। अगर नहीं था तो गिरफ्तारी का कोई कारण ही नहीं है और इसकी मुखालफत जरूर हो। आज के दौर में फुटेज देखने के बाद इस तरह की गलतियों की गुंजाइश कम ही रहती है। लेकिन हमारे देश का राजनीतिक वर्ग शायद आपराधिक रूप से जड़वत या दुराग्रही हो गया है। बानगी के रूप में सीपीएम नेता सीताराम येचुरी को वामपंथी एआईएसएफ से संबद्ध छात्र यूनियन के अध्यक्ष की गिरफ्तारी में आपातकाल की याद आ गई, लेकिन इसी शिद्दत से उस घटना की निंदा करना वे भूल गए। इस छात्र यूनियन के अध्यक्ष को अपनी गिरफ्तारी के बाद न्यायपालिका पर पूरा भरोसा हो गया लेकिन जब देश की संप्रभुता के खिलाफ नारे लगे तो संविधान पर विश्वास नहीं जगा।

न येचुरी को और न ही इस छात्र नेता को यह याद आया कि देश के पहले प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने ही अपने शासनकाल में चीन युद्ध के दौरान जब ऐसे ही कुछ धुर मार्क्सवादी कम्युनिस्टों ने भारत छोड़ चीन की हिमायत करनी शुरू की तो संविधान में १६वां संशोधन करते हुए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता रोकने के लिए देश की संप्रभुता और अखंडता को बचाया था। आज उन संगठनों ने, जिन्होंने अखलाक के मरने पर असहिष्णुता के नाम पर

सड़कों पर प्रदर्शन के रूप में अपनी आमद दर्ज की और कई बुद्धिजीवियों ने अपने पुरस्कार लौटाए, क्या एक बार भी कहा कि राज्य को असली असहिष्णुता और जीरो टॉलरेंस अब दिखानी चाहिए? आज सरकार को उसी संविधान के प्रावधान को सख्ती से अमल में लाने की जरूरत है। इन गुमराह छात्रों को यह भी नहीं मालूम कि भारत के टुकड़े होंगे तो जेएनयू भी नहीं रहेगा।

भारत जैसे द्वंद्वात्मक प्रजातंत्र में हम सरकार की मुखालफत किसी हद तक (संविधान की सीमा में रहते हुए) कर सकते हैं, पर संप्रभुता को चुनौती नहीं दे सकते, ना ही उस अखंडता को जो संविधान की उद्देशिका का मूल है। भारत के संविधान की उद्देशिका में प्रारंभ में ही लिखा है - हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न समाजवादी पंथ निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए... एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं। अर्थात् भारत की एकता और संप्रभुता अक्षुण्ण है। साथ ही इस अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार को बाधित करने वाले आठ युक्तियुक्त निर्बंध में से एक है श्भारत की संप्रभुता और अखंडता के हितों में। अर्थात् इस छात्रों ने जो किया, वह देश के साथ संभवतः सबसे बड़ा अपराध है। ये छात्र गुमराह नहीं हैं और तथाकथित रूप से पढ़े-लिखे वर्ग में आते हैं (परास्नातक और पीएचडी छात्र थे) और जो कुकृत्य इन्होंने किया, होशो-हवाश में किया। भारत तोड़ने की कोई भी अभिव्यक्ति अकल्पनीय है।

लिहाजा राज्य इसे प्रभावी रूप से हमेशा-हमेशा के लिए खत्म करने के लिए जो भी कदम उठाए, वह उचित होगा, इसलिए नहीं कि इन मुट्ठीभर छात्रों का कृत्य संविधानसम्मत नहीं है बल्कि इसलिए कि आईएसआईएस भारत में युवाओं को गुमराह करने का जबरदस्त कुचक्र शुरू कर चुका है और राज्य की तरफ से किसी किस्म की ढिलाई से एक वर्ग-विशेष के कुछ गुमराह युवाओं को बौद्धिक वैधानिकता का संदेश जा सकता है और वे यह सोच सकते हैं कि जब आम छात्र भी भारत की अखंडता के खिलाफ ही नहीं पाकिस्तान और कश्मीर के समर्थन में नारे लगाकर आराम से रह सकते हैं तो हम भी यह सब कर सकते हैं। आखिर आईएसआईएस भी तो यही चाहता है!

देश या समाज के जीवनकाल में ऐसे क्षण आते हैं, जब उन्मुक्तता और उसकी सीमाओं में एक द्वंद्व होता है। उन्मुक्तता समयके साथ समाज के सोच की उत्कृष्टता को देखते हुए बढ़ाई जा सकती है, लेकिन उसकी भी एक शाश्वत शर्त है और वह है - देश की संप्रभुता अक्षुण्ण बनाए रखना। अगर देश टूट गया तो न संविधान रहेगा, न ही अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य। और हम फिसलकर एक आदिम युग में जा चुके होंगे। पाकिस्तान, सीरिया और विश्व के तमाम अन्य मुल्क इसके गवाह हैं।

○

‘बीबीसी.कॉम हिंदी’ पर प्रकाशित लेख

जेएनयू में सफाई अभियान की जरूरत है

- अमिताभ सिन्हा

जेएनयू की पहचान देश के सर्वोच्च शिक्षा संस्थान के रूप में बनी। इसके पीछे कई कारण थे— यहीं पर पहली बार नई शिक्षा व्यवस्था, सेमेस्टर सिस्टम के तौर पर शुरू हुई थी। लेकिन इन सबके साथ एक बात और हुई। जेएनयू तुष्टिकरण और अल्पसंख्यकवाद जैसी चीजों के लिए भी अनुकूल बनता गया। यह मुझे छात्र होने के दौरान भी महसूस हुआ। इसके चलते ही मेरा जुड़ाव राष्ट्रवादी विचार के छात्र संगठन अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद से हुआ। वह राजनीतिक वजहों से नहीं हुआ था, वह केवल राष्ट्रवादी कारणों के चलते हुआ था। मुझे हमेशा लगता रहा है कि जेएनयू की पहचान शिक्षा के सर्वोच्च संस्थान के बदले राष्ट्र विरोधी संस्था के तौर पर क्यों बन रही है? मौजूदा विवाद ही देखिए। जेएनयू में हिंदू संगठनों का, संघ का और भारतीय जनता पार्टी का विरोध हो रहा है। मैं सुप्रीम कोर्ट में वकील भी हूँ तो कानूनी तौर पर भी इस मसले को देखिए कि एक कैंपस में राष्ट्र विरोधी नारे लग रहे हैं।

जिस आदमी पर संसद पर हमले का आरोप सच साबित हो चुका है। सुप्रीम कोर्ट ने सजा के फैसले को कायम रखा, उसे फांसी हुई। उसकी बरसी पर भारत विरोधी नारे लगे हैं। सरकार के विरोध में नारे लगाना और यह कहना कि कश्मीर भारत से अलग होना चाहिए। यह सीधे राष्ट्रद्रोह का मामला है। मुझे लगता है कि ऐसे तत्वों पर सख्ती चाहिए। न सिर्फ जेएनयू प्रशासन से बल्कि समाज से यह सख्ती होनी चाहिए। समाज में भी कुछ लोग राष्ट्र विरोध और चरमपंथ के लिए नरम रुख रखते हैं। यह केवल वोट की राजनीति के लिए हो रहा है, यह दुखद है। यह दुनिया के किसी दूसरे देश में नहीं होता है। फ्रांस, ऑस्ट्रेलिया और अमरीका में या कहीं भी राष्ट्र का विरोध बर्दाश्त नहीं किया जाता, भले विरोध करने वाला किसी भी राजनीतिक विचारधारा का हो। यह भारत में ही वोट की राजनीति का जरिया बन जाता है जो शर्मनाक है। जेएनयू में जैसे तत्व हैं, वैसे दुनियाभर में हैं। हमारे देश की वामपंथी विचारधारा में राष्ट्रवाद के लिए कोई जगह नहीं है, उसकी जगह वे अंतरराष्ट्रीयवाद को मानते हैं। वे दूसरे देश के राष्ट्रवाद को मानते हैं लेकिन अपने देश के राष्ट्रवाद को नहीं मानते। अफसोस है कि दूसरे राजनीतिक दल वामपंथ की इस धारा को आगे बढ़ाते हैं, अल्पसंख्यकवाद के चलते। जेएनयू के छात्र होने के नाते मुझे यह भी अच्छा नहीं लगा कि शट डाउन जेएनयू हैशटैग ट्रेंड करने लगा है। लेकिन क्रिया के आधार पर प्रतिक्रिया होती है, यह सार्वभौमिक नियम है। दरअसल जेएनयू प्रशासन और समाज को यह समझना होगा कि जेएनयू का विरोध उसकी छवि के चलते ही हो रहा है। मेरा मानना है कि बीते दस सालों के अंदर जेएनयू में राष्ट्रविरोधियों की संख्या बढ़ी है। इससे उसकी छवि गिरती जा रही है। यूपीए सरकार के नरम रवैये के चलते जेएनयू में राष्ट्रविरोधी ताकतें मुखर होती गईं। जेएनयू प्रशासन और समाज को ऐसी स्थिति से बचने की जरूरत है। मुझे यह भी नहीं लगता है कि जेएनयू को बंद करना चाहिए। यह सही नहीं है। हां, हमारा ये कहना है कि जेएनयू के अंदर सफाई अभियान लागू होना चाहिए क्योंकि बीते दस सालों के अंदर जेएनयू के अंदर राष्ट्रविरोधी बातें करना सबसे बेहतरीन फैशन बन गया है।

○

बौद्धिक बेईमानी का तमाशा

- राजीव सचान

अपने देश में बुद्धिजीवियों को परिभाषित किया जाना इसलिए थोड़ा कठिन है, क्योंकि कोई भी खुद को बुद्धिजीवी करार दे सकता है। भारत में आमतौर पर हर वह शख्स बुद्धिजीवी है जो साहित्यकार, लेखक, पत्रकार, कलाकार के तौर पर जाना जाता है। कई नेता भी बुद्धिजीवी के तौर पर जाने जाते हैं और नौकरशाह भी। संगोष्ठी-सेमिनार में बोलने वाले और प्रोफेसर तो अनिवार्य रूप से बुद्धिजीवी कहलाते हैं। इनमें से कई प्रख्यात बुद्धिजीवी कहलाने लगते हैं, लेकिन जरूरी नहीं कि वे तर्कसंगत-न्यायसंगत लेखन-वाचन-चिंतन भी करते हों। इसकी एक बानगी तब मिली जब जेएनयू मसले पर मुकुल केसवन ने एक अंग्रेजी दैनिक में लिखा-‘राजनाथ सिंह को पता होना चाहिए कि कन्हैया कृष्ण का ही दूसरा नाम है।’ वह इतने तक ही सीमित नहीं रहे। उन्होंने कृष्ण के बालजीवन का उल्लेख करते हुए कन्हैया कुमार की मां मीना देवी को यशोदा भी करार दिया। निपट मूर्खता और बौद्धिक बेईमानी की यह इकलौती मिसाल नहीं है। न जाने कितने कथित बुद्धिजीवी जेएनयू में देश विरोधी नारे लगाने वालों को महज राजनीतिक असहमति प्रकट करने वाला बताने पर आमादा हैं। इसके लिए वे देश विरोधी नारों का जिक्र करने से तो कन्नी काट ही रहे हैं, उन पोस्टरों की भी अनदेखी कर रहे हैं जो अफजल गुरु के समर्थन में जेएनयू में चस्पा किए गए थे। इन पोस्टरों में अफजल गुरु को शहीद बताने के साथ ही उसके अधूरे अरमानों को पूरा करने का संकल्प व्यक्त किया गया था। जेएनयू छात्रसंघ अध्यक्ष ने देश विरोधी नारे लगाए या नहीं, यह जांच का विषय है। इसी तरह यह भी बहस का विषय है कि क्या ऐसे नारे लगाने वालों पर देशद्रोह का ही मुकदमा दर्ज किया जाना चाहिए? यह बहस सही दिशा में तभी आगे बढ़ सकती है जब बौद्धिक बेईमानी का परित्याग किया जाए। १९४७ भारत की बर्बादी तक, कश्मीर की आजादी तक जंग रहेगी-जंग रहेगी, भारत तेरे टुकड़े होंगे-इंशाअल्लाह इंशाअल्लाह, अफजल हम शर्मिदा हैं-तेरे कातिल जिंदा हैं..ये वे नारे हैं जो ६ फरवरी को जेएनयू परिसर में लगाए गए। इस नारेबाजी पर दिल्ली पुलिस की कार्रवाई का विरोध करने वाले भूले से भी इन नारों का जिक्र नहीं कर रहे हैं। उलटे बड़े भोलेपन से पूछ रहे हैं कि मोदी सरकार राजनीतिक असहमति के प्रति इतनी आक्रामक क्यों है? अगर भारत की बर्बादी के नारे लगाना केवल राजनीतिक असहमति भर है तो फिर हाफिज सईद की भारत विरोधी रैलियों पर आपत्ति का भी कोई मतलब नहीं रह जाता। कथित बुद्धिजीवियों के शातिर तबके ने उन वीडियो पर तो कोई ध्यान नहीं दिया जिनमें अफजल गुरु के पोस्टरों के साथ देश विरोधी नारे लगाए जाते देखा-सुना जा सकता है, लेकिन संदिग्ध किस्म के उस वीडियो का संज्ञान अवश्य लिया जिसमें कथित तौर पर विद्यार्थी परिषद के छात्र ‘पाकिस्तान जिंदाबाद’ कहते हैं। इसका संज्ञान कई पत्रकारों, कलाकारों ने भी लिया। बौद्धिक बेईमानी की ऐसी ही मिसाल हाफिज सईद के ट्वीट को लेकर

पेश की गई। किसी को नहीं पता कि हाफिज का कोई ट्विटर अकाउंट है या नहीं और अगर है तो किस नाम से, लेकिन जैसे ही राजनाथ सिंह ने यह कहा कि जेएनयू में जो कुछ हुआ उसके पीछे लश्कर सरगना का हाथ है, तमाम लोग इस नतीजे पर पहुंच गए कि गृहमंत्री हाफिज के फर्जी ट्विटर अकाउंट को असली समझ बैठे। और जब हाफिज सर्ईद का वीडियो आया तो वही लोग उसे प्रामाणिक ठहराने लगे जो इशरत जहां मामले में डेविड हेडली को झूठा बताने लगे थे। पता नहीं सच क्या है, लेकिन इसमें दो राय नहीं कि जेएनयू में वही नारे लगे जो हाफिज सर्ईद की रैलियों में लगते रहते हैं। जेएनयू में देश विरोधी नारे लगाने वालों का बचाव यह कहकर भी किया गया कि सरकार को फ्रिंज एलिमेंट यानी मुख्यधारा से अलग तत्वों की परवाह नहीं करनी चाहिए। गौर करें यह तर्क वही दे रहे हैं जो अनाम-गुमनाम से हिंदू संगठनों की हरकतों पर आसमान सिर पर उठा लेते हैं। वे इन संगठनों की पीठ पर मोदी का हाथ भी देख रहे होते हैं। अगर जेएनयू में 'फ्रिंज एलिमेंट' के रूप में कुछ छात्र समूहों को देश विरोधी गतिविधियों की इजाजत मिलनी चाहिए तो फिर ऐसी ही इजाजत अन्य विश्वविद्यालयों-कॉलेजों में क्यों नहीं मिलनी चाहिए? १५५ पहली बार नहीं है जब बिना शर्म-संकोच बौद्धिक बेईमानी का परिचय दिया जा रहा हो। ध्यान दें कि जो दादरी की घटना पर उबल पड़े थे और उचित ही उबल पड़े थे वे मूदबिदरी की घटना पर मौन रहे। वे मालदा पर भी बोलने में शरमा गए थे। मालदा की घटना पर तो मीडिया के एक हिस्से को भी सांप सा सूंघ गया था। जो कमलेश तिवारी के मूर्खता भरे बयान पर आग बबूला हो गए थे वे उसके सिर इनाम रखने वाले मौलानाओं के खिलाफ एक शब्द भी नहीं बोल सके। जो साक्षी-साध्वी के बेतुके बयानों पर तैश में आ जाते हैं वे आजम-ओवैसी-दिग्विजय के ऐसे ही बयानों पर गुमसुम हो जाते हैं। अगर गोडसे का महिमामंडन शर्मनाक है तो अफजल का गुणगान ऐसा ही क्यों नहीं है? जो लोग गुलाम अली का मुंबई में कार्यक्रम न होने पर जार-जार रोते हैं वे एआर रहमान के खिलाफ फतवे पर मुंह खोलने में क्यों घबराते हैं? यदि जेएनयू में अफजल के पोस्टर लहराना 'बच्चों' की 'नादानी' है तो राहुल को काले झंडे दिखाना फासीवाद कैसे है? १५६ जेएनयू में देश विरोधी नारे लगाने वालों के बचाव में एक कुतर्क यह भी पेश किया जा रहा है कि वहां इस तरह का काम पहले भी होता रहा है। जैसे २०१० में छत्तीसगढ़ में ७६ सीआरपीएफ जवानों की हत्या पर खुशी जताई जा चुकी है। एक अन्य कुतर्क यह है कि कश्मीर घाटी में भी तो अफजल के समर्थन में नारे लगते हैं। क्या यह कहने की कोशिश हो रही है कि अगर ऐसे ही नारे देश में भी लगे तो भी हर्ज नहीं? जेएनयू में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की पक्षधरता वे तमाम लोग भी कर रहे हैं जिन्होंने इससे अनजान रहना ही बेहतर समझा कि हाल में ही रामदेव को वहां बोलने की इजाजत नहीं दी गई। राजनीति का स्तर गिरता चला जाए तो वह जनदबाव में सुधार सकता है, लेकिन इसमें संदेह है कि बौद्धिक विचार-विमर्श के गिरते स्तर को सुधारने का कोई उपाय है। १५७ (लेखक दैनिक जागरण में एसोसिएट एडीटर हैं) १५८ १५९ १६० १६१ १६२ १६३ १६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७० १७१ १७२ १७३ १७४ १७५ १७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९१ १९२ १९३ १९४ १९५ १९६ १९७ १९८ १९९ २०० २०१ २०२ २०३ २०४ २०५ २०६ २०७ २०८ २०९ २१० २११ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २१९ २२० २२१ २२२ २२३ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २२९ २३० २३१ २३२ २३३ २३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ २४६ २४७ २४८ २४९ २५० २५१ २५२ २५३ २५४ २५५ २५६ २५७ २५८ २५९ २६० २६१ २६२ २६३ २६४ २६५ २६६ २६७ २६८ २६९ २७० २७१ २७२ २७३ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २७९ २८० २८१ २८२ २८३ २८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४ २९५ २९६ २९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ३१३ ३१४ ३१५ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२१ ३२२ ३२३ ३२४ ३२५ ३२६ ३२७ ३२८ ३२९ ३३० ३३१ ३३२ ३३३ ३३४ ३३५ ३३६ ३३७ ३३८ ३३९ ३४० ३४१ ३४२ ३४३ ३४४ ३४५ ३४६ ३४७ ३४८ ३४९ ३५० ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७ ३५८ ३५९ ३६० ३६१ ३६२ ३६३ ३६४ ३६५ ३६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८ ३७९ ३८० ३८१ ३८२ ३८३ ३८४ ३८५ ३८६ ३८७ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९२ ३९३ ३९४ ३९५ ३९६ ३९७ ३९८ ३९९ ४०० ४०१ ४०२ ४०३ ४०४ ४०५ ४०६ ४०७ ४०८ ४०९ ४१० ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६ ४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४२४ ४२५ ४२६ ४२७ ४२८ ४२९ ४३० ४३१ ४३२ ४३३ ४३४ ४३५ ४३६ ४३७ ४३८ ४३९ ४४० ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४५ ४४६ ४४७ ४४८ ४४९ ४५० ४५१ ४५२ ४५३ ४५४ ४५५ ४५६ ४५७ ४५८ ४५९ ४६० ४६१ ४६२ ४६३ ४६४ ४६५ ४६६ ४६७ ४६८ ४६९ ४७० ४७१ ४७२ ४७३ ४७४ ४७५ ४७६ ४७७ ४७८ ४७९ ४८० ४८१ ४८२ ४८३ ४८४ ४८५ ४८६ ४८७ ४८८ ४८९ ४९० ४९१ ४९२ ४९३ ४९४ ४९५ ४९६ ४९७ ४९८ ४९९ ५०० ५०१ ५०२ ५०३ ५०४ ५०५ ५०६ ५०७ ५०८ ५०९ ५१० ५११ ५१२ ५१३ ५१४ ५१५ ५१६ ५१७ ५१८ ५१९ ५२० ५२१ ५२२ ५२३ ५२४ ५२५ ५२६ ५२७ ५२८ ५२९ ५३० ५३१ ५३२ ५३३ ५३४ ५३५ ५३६ ५३७ ५३८ ५३९ ५४० ५४१ ५४२ ५४३ ५४४ ५४५ ५४६ ५४७ ५४८ ५४९ ५५० ५५१ ५५२ ५५३ ५५४ ५५५ ५५६ ५५७ ५५८ ५५९ ५६० ५६१ ५६२ ५६३ ५६४ ५६५ ५६६ ५६७ ५६८ ५६९ ५७० ५७१ ५७२ ५७३ ५७४ ५७५ ५७६ ५७७ ५७८ ५७९ ५८० ५८१ ५८२ ५८३ ५८४ ५८५ ५८६ ५८७ ५८८ ५८९ ५९० ५९१ ५९२ ५९३ ५९४ ५९५ ५९६ ५९७ ५९८ ५९९ ६०० ६०१ ६०२ ६०३ ६०४ ६०५ ६०६ ६०७ ६०८ ६०९ ६१० ६११ ६१२ ६१३ ६१४ ६१५ ६१६ ६१७ ६१८ ६१९ ६२० ६२१ ६२२ ६२३ ६२४ ६२५ ६२६ ६२७ ६२८ ६२९ ६३० ६३१ ६३२ ६३३ ६३४ ६३५ ६३६ ६३७ ६३८ ६३९ ६४० ६४१ ६४२ ६४३ ६४४ ६४५ ६४६ ६४७ ६४८ ६४९ ६५० ६५१ ६५२ ६५३ ६५४ ६५५ ६५६ ६५७ ६५८ ६५९ ६६० ६६१ ६६२ ६६३ ६६४ ६६५ ६६६ ६६७ ६६८ ६६९ ६७० ६७१ ६७२ ६७३ ६७४ ६७५ ६७६ ६७७ ६७८ ६७९ ६८० ६८१ ६८२ ६८३ ६८४ ६८५ ६८६ ६८७ ६८८ ६८९ ६९० ६९१ ६९२ ६९३ ६९४ ६९५ ६९६ ६९७ ६९८ ६९९ ७०० ७०१ ७०२ ७०३ ७०४ ७०५ ७०६ ७०७ ७०८ ७०९ ७१० ७११ ७१२ ७१३ ७१४ ७१५ ७१६ ७१७ ७१८ ७१९ ७२० ७२१ ७२२ ७२३ ७२४ ७२५ ७२६ ७२७ ७२८ ७२९ ७३० ७३१ ७३२ ७३३ ७३४ ७३५ ७३६ ७३७ ७३८ ७३९ ७४० ७४१ ७४२ ७४३ ७४४ ७४५ ७४६ ७४७ ७४८ ७४९ ७५० ७५१ ७५२ ७५३ ७५४ ७५५ ७५६ ७५७ ७५८ ७५९ ७६० ७६१ ७६२ ७६३ ७६४ ७६५ ७६६ ७६७ ७६८ ७६९ ७७० ७७१ ७७२ ७७३ ७७४ ७७५ ७७६ ७७७ ७७८ ७७९ ७८० ७८१ ७८२ ७८३ ७८४ ७८५ ७८६ ७८७ ७८८ ७८९ ७९० ७९१ ७९२ ७९३ ७९४ ७९५ ७९६ ७९७ ७९८ ७९९ ८०० ८०१ ८०२ ८०३ ८०४ ८०५ ८०६ ८०७ ८०८ ८०९ ८१० ८११ ८१२ ८१३ ८१४ ८१५ ८१६ ८१७ ८१८ ८१९ ८२० ८२१ ८२२ ८२३ ८२४ ८२५ ८२६ ८२७ ८२८ ८२९ ८३० ८३१ ८३२ ८३३ ८३४ ८३५ ८३६ ८३७ ८३८ ८३९ ८४० ८४१ ८४२ ८४३ ८४४ ८४५ ८४६ ८४७ ८४८ ८४९ ८५० ८५१ ८५२ ८५३ ८५४ ८५५ ८५६ ८५७ ८५८ ८५९ ८६० ८६१ ८६२ ८६३ ८६४ ८६५ ८६६ ८६७ ८६८ ८६९ ८७० ८७१ ८७२ ८७३ ८७४ ८७५ ८७६ ८७७ ८७८ ८७९ ८८० ८८१ ८८२ ८८३ ८८४ ८८५ ८८६ ८८७ ८८८ ८८९ ८९० ८९१ ८९२ ८९३ ८९४ ८९५ ८९६ ८९७ ८९८ ८९९ ९०० ९०१ ९०२ ९०३ ९०४ ९०५ ९०६ ९०७ ९०८ ९०९ ९१० ९११ ९१२ ९१३ ९१४ ९१५ ९१६ ९१७ ९१८ ९१९ ९२० ९२१ ९२२ ९२३ ९२४ ९२५ ९२६ ९२७ ९२८ ९२९ ९३० ९३१ ९३२ ९३३ ९३४ ९३५ ९३६ ९३७ ९३८ ९३९ ९४० ९४१ ९४२ ९४३ ९४४ ९४५ ९४६ ९४७ ९४८ ९४९ ९५० ९५१ ९५२ ९५३ ९५४ ९५५ ९५६ ९५७ ९५८ ९५९ ९६० ९६१ ९६२ ९६३ ९६४ ९६५ ९६६ ९६७ ९६८ ९६९ ९७० ९७१ ९७२ ९७३ ९७४ ९७५ ९७६ ९७७ ९७८ ९७९ ९८० ९८१ ९८२ ९८३ ९८४ ९८५ ९८६ ९८७ ९८८ ९८९ ९९० ९९१ ९९२ ९९३ ९९४ ९९५ ९९६ ९९७ ९९८ ९९९ १०००

तौर पर जाने जाते हैं और नौकरशाह भी। संगोष्ठी-सेमिनार में बोलने वाले और प्रोफेसर तो अनिवार्य रूप से बुद्धिजीवी कहलाते हैं। इनमें से कई प्रख्यात बुद्धिजीवी कहलाने लगते हैं, लेकिन जरूरी नहीं कि वे तर्कसंगत-न्यायसंगत लेखन-वाचन-चिंतन भी करते हों। इसकी एक बानगी तब मिली जब जेएनयू मसले पर मुकुल केसवन ने एक अंग्रेजी दैनिक में लिखा-‘राजनाथ सिंह को पता होना चाहिए कि कन्हैया कृष्ण का ही दूसरा नाम है।’ वह इतने तक ही सीमित नहीं रहे। उन्होंने कृष्ण के बालजीवन का उल्लेख करते हुए कन्हैया कुमार की मां मीना देवी को यशोदा भी करार दिया। निपट मूर्खता और बौद्धिक बेईमानी की यह इकलौती मिसाल नहीं है। न जाने कितने कथित बुद्धिजीवी जेएनयू में देश विरोधी नारे लगाने वालों को महज राजनीतिक असहमति प्रकट करने वाला बताने पर आमादा हैं। इसके लिए वे देश विरोधी नारों का जिक्र करने से तो कन्नी काट ही रहे हैं, उन पोस्टरों की भी अनदेखी कर रहे हैं जो अफजल गुरु के समर्थन में जेएनयू में चस्पा किए गए थे। इन पोस्टरों में अफजल गुरु को शहीद बताने के साथ ही उसके अधूरे अरमानों को पूरा करने का संकल्प व्यक्त किया गया था। जेएनयू छात्रसंघ अध्यक्ष ने देश विरोधी नारे लगाए या नहीं, यह जांच का विषय है। इसी तरह यह भी बहस का विषय है कि क्या ऐसे नारे लगाने वालों पर देशद्रोह का ही मुकदमा दर्ज किया जाना चाहिए? यह बहस सही दिशा में तभी आगे बढ़ सकती है जब बौद्धिक बेईमानी का परित्याग किया जाए। १भारत की बर्बादी तक, कश्मीर की आजादी तक जंग रहेगी-जंग रहेगी, भारत तेरे टुकड़े होंगे-इंशाअल्लाह इंशाअल्लाह, अफजल हम शर्मिदा हैं-तेरे कातिल जिंदा हैं. .ये वे नारे हैं जो ६ फरवरी को जेएनयू परिसर में लगाए गए। इस नारेबाजी पर दिल्ली पुलिस की कार्रवाई का विरोध करने वाले भूले से भी इन नारों का जिक्र नहीं कर रहे हैं। उलटे बड़े भोलेपन से पूछ रहे हैं कि मोदी सरकार राजनीतिक असहमति के प्रति इतनी आक्रामक क्यों है? अगर भारत की बर्बादी के नारे लगाना केवल राजनीतिक असहमति भर है तो फिर हाफिज सईद की भारत विरोधी रैलियों पर आपत्ति का भी कोई मतलब नहीं रह जाता। कथित बुद्धिजीवियों के शातिर तबके ने उन वीडियो पर तो कोई ध्यान नहीं दिया जिनमें अफजल गुरु के पोस्टरों के साथ देश विरोधी नारे लगाए जाते देखा-सुना जा सकता है, लेकिन संदिग्ध किस्म के उस वीडियो का संज्ञान अवश्य लिया जिसमें कथित तौर पर विद्यार्थी परिषद के छात्र ‘पाकिस्तान जिंदाबाद’ कहते हैं। इसका संज्ञान कई पत्रकारों, कलाकारों ने भी लिया। बौद्धिक बेईमानी की ऐसी ही मिसाल हाफिज सईद के ट्वीट को लेकर पेश की गई। १किसी को नहीं पता कि हाफिज का कोई ट्विटर अकाउंट है या नहीं और अगर है तो किस नाम से, लेकिन जैसे ही राजनाथ सिंह ने यह कहा कि जेएनयू में जो कुछ हुआ उसके पीछे लश्कर सरगना का हाथ है, तमाम लोग इस नतीजे पर पहुंच गए कि गृहमंत्री हाफिज के फर्जी ट्विटर अकाउंट को असली समझ बैठे। और जब हाफिज सईद का वीडियो आया तो वही लोग उसे प्रामाणिक ठहराने लगे जो इशरत जहां मामले में डेविड हेडली को झूठा बताने लगे थे। पता नहीं सच क्या है, लेकिन इसमें दो राय नहीं कि जेएनयू में वही नारे लगे जो हाफिज सईद की रैलियों में लगते रहते हैं। जेएनयू में देश विरोधी नारे लगाने वालों का बचाव यह कहकर भी किया गया कि सरकार को फ्रिंज एलिमेंट यानी मुख्यधारा से अलग तत्वों की परवाह नहीं करनी

चाहिए। गौर करें यह तर्क वही दे रहे हैं जो अनाम-गुमनाम से हिंदू संगठनों की हरकतों पर आसमान सिर पर उठा लेते हैं। वे इन संगठनों की पीठ पर मोदी का हाथ भी देख रहे होते हैं। अगर जेएनयू में 'फ्रिंज एलिमेंट' के रूप में कुछ छात्र समूहों को देश विरोधी गतिविधियों की इजाजत मिलनी चाहिए तो फिर ऐसी ही इजाजत अन्य विश्वविद्यालयों-कॉलेजों में क्यों नहीं मिलनी चाहिए? १५५ पहली बार नहीं है जब बिना शर्म-संकोच बौद्धिक बेईमानी का परिचय दिया जा रहा हो। ध्यान दें कि जो दादरी की घटना पर उबल पड़े थे और उचित ही उबल पड़े थे वे मूदबिदरी की घटना पर मौन रहे। वे मालदा पर भी बोलने में शरमा गए थे। मालदा की घटना पर तो मीडिया के एक हिस्से को भी सांप सा सूंघ गया था। जो कमलेश तिवारी के मूर्खता भरे बयान पर आग बबूला हो गए थे वे उसके सिर इनाम रखने वाले मौलानाओं के खिलाफ एक शब्द भी नहीं बोल सके। जो साक्षी-साध्वी के बेतुके बयानों पर तैश में आ जाते हैं वे आजम-ओवैसी-दिग्विजय के ऐसे ही बयानों पर गुमसुम हो जाते हैं। अगर गोडसे का महिमामंडन शर्मनाक है तो अफजल का गुणगान ऐसा ही क्यों नहीं है? जो लोग गुलाम अली का मुंबई में कार्यक्रम न होने पर जार-जार रोते हैं वे एआर रहमान के खिलाफ फतवे पर मुंह खोलने में क्यों घबराते हैं? यदि जेएनयू में अफजल के पोस्टर लहराना 'बच्चों' की 'नादानी' है तो राहुल को काले झंडे दिखाना फासीवाद कैसे है? १जेएनयू में देश विरोधी नारे लगाने वालों के बचाव में एक कुतर्क यह भी पेश किया जा रहा है कि वहां इस तरह का काम पहले भी होता रहा है। जैसे २०१० में छत्तीसगढ़ में ७६ सीआरपीएफ जवानों की हत्या पर खुशी जताई जा चुकी है। एक अन्य कुतर्क यह है कि कश्मीर घाटी में भी तो अफजल के समर्थन में नारे लगते हैं। क्या यह कहने की कोशिश हो रही है कि अगर ऐसे ही नारे देश में भी लगें तो भी हर्ज नहीं? जेएनयू में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की पक्षधरता वे तमाम लोग भी कर रहे हैं जिन्होंने इससे अनजान रहना ही बेहतर समझा कि हाल में ही रामदेव को वहां बोलने की इजाजत नहीं दी गई। राजनीति का स्तर गिरता चला जाए तो वह जनदबाव में सुधर सकता है, लेकिन इसमें संदेह है कि बौद्धिक विचार-विमर्श के गिरते स्तर को सुधारने का कोई उपाय है।

○

घातक राजनीति का अड्डा

- शंकर शरण

यह संयोग नहीं कि दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) से किसी चर्चित शोध, अध्ययन, आविष्कार या लेखन संबंधी कोई समाचार सुनने को नहीं मिलता। साहित्य, कला, खेलकूद, रंगमंच या नीति, कूटनीति निर्माण में भी वहां से कोई उल्लेखनीय योगदान नहीं मिला। यहां तक कि वहां से कोई जानी-मानी शोध पत्रिका या सामान्य विद्वत् पत्रिका तक प्रकाशित नहीं हो सकी जिसे कोई अध्येता पढ़ना आवश्यक समझे। यह स्थिति तब है जब वह देश भर में केंद्र सरकार से प्रति छात्र और प्रति अध्यापक सर्वाधिक अनुदान पाने वाला विश्वविद्यालय है। कितनी शर्मनाक बात है कि कुछ पहले एक बार जब एक संवाददाता ने जेएनयू की चार दशक की उपलब्धियों के बारे में पूछा तो वहां के बड़े अधिकारी का उत्तर था कि अब तक सिविल सर्विस में इतने छात्र वहां से चुने गए। वे कोई और उपलब्धि नहीं गिना पाए। क्या इसीलिए वह विश्वविद्यालय बना था कि वहां सिविल सर्विस की तैयारी या विभाजक और तरह-तरह की रेडिकल राजनीतिबाजी के आरामदेह अड्डे बनें। जेएनयू में राजनीतिक एक्टिविज्म कक्षा से बाहर नहीं, समाज विज्ञान और मानविकी विषयों के सिलेबस और पाठ्यसूची में भी है। यही कारण है कि वहां हर तरह के रेडिकलिज्म को फौरन जमीन मिल जाती है। संसद पर हमला करने वाले जिहादी आतंकवादी को हीरो बनाना उसी परंपरा की नवीनतम कड़ी है। इससे पहले लोकसभा चुनाव दौरान समाचार आए थे कि जेएनयू से छात्र और प्रोफेसर दल बनाकर बनारस में नरेंद्र मोदी के विरुद्ध प्रचार करने गए थे। यह किस प्रकार की शैक्षिक गतिविधि है जिस पर भारतीय जनता के टैक्स का करोड़ों रुपया प्रति वर्ष बर्बाद किया जाता है। एक ओर जेएनयू में हर तरह के देशी-विदेशी भारत निंदकों को सम्मानपूर्वक मंच मिलता है, किंतु दूसरी ओर देश के गृहमंत्री (पी. चिदंबरम) को बोलने नहीं दिया जाता। यहां तक कि उन के आगमन के विरुद्ध आंदोलन होता है। यह कोई नई बात नहीं। पैंतीस वर्ष पहले वहां देश की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को भी बोलने नहीं दिया गया, जबकि लेनिन, स्टालिन, माओ और यासिर अराफात के लिए प्रोफेसर और छात्र मिलकर आहें भरते थे। जिन्होंने इंदिरा गांधी को जेएनयू कैम्पस आने से सफलतापूर्वक रोका उनमें कई आज वहां प्रोफेसर नियुक्त हैं। अतः जेएनयू में भारत विरोधी, हिंदू विरोधी राजनीति कोई अभिव्यक्ति स्वतंत्रता का मामला नहीं, क्योंकि वहां देशभक्त स्वरो को वही अभिव्यक्ति अधिकार नहीं मिलते। न ही उनकी नियुक्ति होने दी जाती है। यह एक संगठित अकादमिक-राजनीतिक षड्यंत्र है, जो दशकों से जारी रहकर ऐसी जड़ जमा चुका है कि सरसरी तौर पहचाना नहीं जा सकता। सारी जबर्दस्ती अकादमिक लबादे में होती है। यदि वहां चलती रही गतिविधियों की जांच हो तब पता चलेगा कि क्यों इसी विशेष कैम्पस में हर प्रकार की घातक राजनीति को पनाह मिली है। पुराने

वामपंथी प्रोफेसरों ने वहां राजनीतिक प्रोपेगंडा को अकादमिक योगदान में बदल कर रख दिया। देश भर से आने वाले भोले-भाले, अबोध युवा यह नहीं समझ पाते। वे समाज विभाजक, देश विरोधी प्रोपेगंडा से सजे सिलेबस, साहित्य आदि को उच्च शिक्षा मानकर आत्मसात कर लेते हैं। यह है वहां विषबेल फैलने का एक रहस्य। पुराने वामपंथी प्रोफेसरों का रिकॉर्ड भी इसे दर्शाता है। सच तो यह है कि जेएनयू में सिविल सर्विस आकांक्षियों को मिलने वाली लाजबाव सुविधाएं और रेडिकलिज्म के फैशन से कड़वी सच्चाई छिपी रही है कि उपलब्धि के नाम पर उन नामी प्रोफेसरों के पास भी कहने के लिए कुछ नहीं। अभी-अभी पुरातत्ववेत्ता केके मुहम्मद की आत्मकथा से भी पुष्टि हुई है कि जेएनयू के मार्क्सवादी इतिहास प्रोफेसरों ने देश की कितनी गहरी हानि की। हमारे देश के स्वार्थी, अज्ञानी नेताओं की गैर-जिम्मेदारी के कारण यह सब छिपा रहा है, क्योंकि सेक्युलरिज्म के नाम पर वे हर तरह की देशद्रोही, हिंदू विरोधी सक्रियता को सहयोगी बना लेते हैं। इसीलिए जेएनयू कभी जांच-पड़ताल का विषय नहीं बनता, जबकि समाज विज्ञान और मानविकी विषयों के मद में वहां होने वाला अतुलनीय खर्च अधिकांश नकली या हानिकारक कार्यों में जाता है। 9अधिकांश प्रोफेसर अपने शोधार्थियों के नकली काम को इसलिए तरजीह देते हैं कि वह सिविल सर्विस की तैयारी कर रहे हैं या उनके विचारों वाले एक्टिस्ट हैं। उस निरर्थकता को प्रोफेसर जान-बूझकर नजरअंदाज करते हैं ताकि कथित शोधार्थियों को साल दर साल हॉस्टल की सुविधा मिलती रहे। इस प्रकार प्रति छात्र जो लाखों रुपये शोध अध्ययन करने के नाम पर खर्च हुए वह सीधे पानी में जाते हैं। अधिकांश प्रोफेसरों की हालत भी लगभग समानांतर है। जेएनयू के सबसे प्रसिद्ध इतिहास प्रोफेसर ही इसके अच्छे उदाहरण हैं। उनके संपूर्ण लेखन का सार-संक्षेप दो-चार पृष्ठों में लिखा जा सकता है, क्योंकि उनमें किसी ज्ञान, शोध के बजाय राजनीतिक संदेश की केंद्रीयता रही है जो अत्यंत सीमित है। 9यह विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा की आड़ में युवाओं के लिए मुख्यतः नौकरी की खोज या वामपंथी राजनीति में कैरियर बनाने वालों का अड्डा भर रहा है। नौकरी की खोज यहां का प्रमुख सेक्युलर कार्य है तो हिंदू विरोधी राजनीति प्रमुख मजहबी कार्य। इन्हीं दो कार्यों को वहां पारंपरिक ढांचागत समर्थन मिलता है। हिंदू विरोधी, सरकार विरोधी और प्रायः देश विरोधी राजनीति का समर्थन। विडंबना यह कि यह सब करने के लिए सारा धन उसी हिंदू जनता, सरकार और देश से लिया जाता है। इस प्रकार सर्वाधिक संसाधन युक्त इस केंद्रीय विश्वविद्यालय में सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा पूरी तरह दिखावटी काम में बदल कर रह गई है। यह भी एक स्कैम है, एक अपराध। जिस उद्देश्य से जेएनयू की स्थापना हुई थी वह बहुत पहले कहीं छूट गया। बल्कि उस उद्देश्य से वहां कार्य का आरंभ ही नहीं हुआ। इसीलिए जब भी जेएनयू की चर्चा होती है तो गलत कारणों से।

○

लक्ष्मण रेखा का उलंघन

- स्वप्न दासगुप्ता

यह कहना उचित होगा कि ३५ साल की उम्र के ज्यादातर लोग छात्रों के प्रति एक मिला-जुला रवैया रखते हैं। एक स्तर पर हम सभी युवाओं की ऊर्जा की प्रशंसा करते हैं और बड़े मन से अपने उस दौर को याद करते हैं जब हम बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियों से मुक्त थे। जो लोग देश के भविष्य के बारे में सोचने के आदी हैं वे युवाओं को भविष्य के रूप में देखते हैं और उनकी मनोदशा युवा ऊर्जा के संदर्भ में बहुत ज्यादा सकारात्मक सोचने की होती है। इसी के साथ छात्र जीवन की पहचान माने जाने वाले और हमेशा उसके साथ जुड़े रहने वाले लापरवाह रवैये को लेकर अधीर हो जाने की संभावना भी होती है। १९७१ के दशक में मेरे अपने छात्र जीवन के दौरान बड़े लोगों के बीच युवाओं को अक्सर लंबे बाल वाले उजड़ लड़के का ताना सुनना पड़ा था। शायद उन बड़े लोगों को अपने युवा दिनों में कठिन समय का सामना करना पड़ा था। सही भी है कि जो लोग १९४१ के दशक में किशोरावस्था से आगे निकले थे वे सभी अपने-अपने समय के कठिन दिनों को याद करते रहते थे। खासकर द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान। यहां मैं मुख्य रूप से यूरोपीय लोगों की बात कर रहा हूँ या उन लोगों की जिन्होंने सांप्रदायिक दंगों और भारत के विभाजन का दर्द डोला था। १कुल मिलाकर छात्रों को संदेह का लाभ मिलता रहा है। मुझे १९६१ के दशक के अंतिम दौर की याद आती है जब व्यक्तिगत और राजनीतिक, दोनों स्तरों पर लिबरेशन यानी मुक्ति की नई-नई समझ उभरी थी। इसके साथ यह भावना भी जुड़ गई थी कि भ्रमित और राह से भटके लोगों को भी एक दूसरा अवसर मिलना चाहिए। छात्रों के प्रति इस मिले-जुले भाव ने अच्छे नतीजे दिए हैं। वियतनाम युद्ध के इर्द-गिर्द उभरी एक जवाबी संस्कृति में शामिल रहे लोगों की एक बड़ी संख्या आज सत्ता अधिष्ठान का हिस्सा हैं। उनमें से ज्यादातर (जो अब पेंशनर हो चुके हैं) अपने अतीत पर अफसोस नहीं करेंगे। ११९७१ के दशक के दौर में रेडिकल पालिटिक्स के अलग-अलग रूप से रूबरू होने वाले व्यक्ति के रूप में मैं यह अवश्य स्वीकार करूंगा कि मुझसे चीजों को समझने में कुछ गलतियां भी हुईं। जब मैं कालेज प्रशासन अथवा सरकार की ओर से छात्रों के खिलाफ कार्रवाई के बारे में पढ़ता हूँ तो मुझे इंग्लैंड में १९७१ के दशक के अंतिम दौर में एक छात्र के रूप में अपने दिनों की याद आ जाती है। एक वाक्या मेरे स्मृति पटल पर अभी भी अंकित है। पैसे की तंगी का सामना कर रही सरकार ने जब उच्च शिक्षा में खर्च पर कटौती करने का निर्णय लिया तो उसके विरोध में छात्र आंदोलन पर उतर आए। आंदोलन के दौरान कई संस्थानों में प्रशासनिक कार्यालयों में छात्रों ने कब्जे कर लिए। ऐसे ही एक आंदोलन का नेतृत्व मेरे लैट का साथी कर रहा था। वह अब एक द. अफ्रीकी विश्वविद्यालय में एक गंभीर प्रोफेसर हैं। कालेज के अधिकारियों ने पहले तो छात्र नेताओं के खिलाफ अदालत

की मदद लेकर मामला हल करने की कोशिश की। इसके तहत उनसे प्रशासनिक कार्यालयों से दूर रहने के लिए कहा गया। जब इसका कोई नतीजा नहीं निकला तो अधिकारी मामले को उच्च न्यायालय ले गए। वहां अदालत की अवमानना के आरोप लगाए गए। अगर ये आरोप साबित हो जाते तो इसका मतलब होता उल्लंघन करने वाले छात्रों को जेल होना। मेरे मित्र, जिन्होंने खुद ही अपनी छवि एक क्रांतिकारी के रूप में गढ़ ली थी, इस घटनाक्रम से बहुत प्रसन्न थे। उनकी दिली चाहत थी कि उन्हें जेल भेज दिया जाए, क्योंकि इससे उनका राजनीतिक कद बहुत अधिक बढ़ जाता। मेरे मित्र का यह दुर्भाग्य था कि उच्च न्यायालय के जिस न्यायाधीश के समक्ष यह मामला आया वह जमीन से जुड़े हुए व्यक्ति थे। न्यायाधीश महोदय के पास अच्छा हास्यबोध था। उनका रवैया बच्चे तो बच्चे हैं वाला था। उनके हिसाब से विरोध कर रहे छात्रों को बस आंख दिखाने की जरूरत है और अगर तब भी बात न बने तो उन्हें सख्ती से डांट दिया जाना चाहिए। जब अभियोजन पक्ष ने उनके समक्ष वे पर्चे प्रस्तुत किए जो छात्र बांट रहे थे तो उन्होंने उनमें से कुछ पर्चों पर निगाह डाली और अपना सिर उठाए बिना कहा-बड़ी आकर्षक बातें लिखी हैं और उससे भी आकर्षक स्पेलिंग हैं। मेरे मित्र बहुत निराश थे कि जज ने उन्हें इस सलाह के साथ छोड़ दिया कि टर्म ब्रेक के लिए वह घर जाएं। साफ है कि मेरे मित्र के हाथ से शहीद होने का मौका छिन गया था। 9मुडो अक्सर आश्चर्य होता है कि क्या जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय की हाल की परेशानी का समाधान कुछ अधिक सम्मानित शिक्षकों द्वारा निकाला जा सकता था।

वे विरोध प्रदर्शन करने वाले छात्रों को चाय पर बुलाते और उन्हें वास्तविक दुनिया को समझने की सलाह देते। दुखद यह रहा कि इस बार छात्र सभी सीमाएं लांघ गए। अगर वे अपनी मांग को हास्टल के हर कमरे में मुफ्त और तेज चलने वाला इंटरनेट उपलब्ध कराने तक सीमित रखते तो यह समझ में आता, बल्कि इसका स्वागत भी किया जाता, लेकिन दुर्भाग्य से उन्होंने फांसी पर लटकाए जा चुके कश्मीरी आतंकी अफजल गुरु के महिमामंडन का फैसला कर अशांति को जन्म देने का काम किया। उनकी इच्छा भारत को बर्बाद होते देखने की भी थी। राजनीतिक अतिवाद का यह कृत्य उन लोगों के लिए सामान्य-स्वाभाविक बात हो सकती है जो यह मानते हैं कि नरेंद्र मोदी सरकार को परेशान करने वाला हर मामला अपनी अहमियत रखता है। जेएनयू का कैंपस एक स्वतंत्र-स्वायत्त गणराज्य नहीं है। यह समाज का हिस्सा है। इस प्रकरण ने सरकारी सहायता पर पलने के बावजूद राष्ट्र के बुनियादी मूल्यों का निरादर करने वाले छात्रों की नकारात्मकता को सामने ला दिया है। शैक्षिक संस्थानों के कैंपस हमेशा छात्रों और शिक्षा से जुड़े लोगों को अतिरिक्त सहूलियत देते हैं। रचनात्मकता की एक पूर्व शर्त बेचौनी है, लेकिन इसी समय एक लक्ष्मण रेखा भी होती है जो बुनियादी रचनात्मकता की बाहरी सीमाओं का निर्धारण करती है।

मेरे विचार से जेएनयू के जिन छात्रों ने इस लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन किया वे न केवल भारत को निशाना बनाने के अपराध के दोषी हैं। बल्कि उन्होंने सामान्य संवेदनशीलता और समझदारी का भी अपमान किया है। उन्होंने अपनी विशेषता के अहंकार का परिचय दिया है और अगर ऐसी हरकतों की नकल को रोकना है तो उनका कृत्य कुछ न कुछ अनुशासनात्मक

कार्रवाई की मांग करता है। पिछले अनेक वर्षों से जेएनयू नारेबाजी और बुनियादी कट्टरपंथ का अड्डा बनकर रह गया है। यह सही समय है जब इसे मुख्यधारा में वापस लाने के लिए कुछ अतिरिक्त प्रयास किए जाएं। एक कैंपस में ज्ञान का आदान-प्रदान ही होना चाहिए। इसे चरमपंथ की नर्सरी के रूप में स्थापित होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस अकादमिक साफ-सफाई को कैसे सबसे अच्छे ढंग से अंजाम दिया जा सकता है, यह देखना शिक्षा प्रतिष्ठान का दायित्व है। नाराज राजनेताओं ने अपना नजरिया टीवी पर व्यक्त कर दिया है, अब उन्हें पीछे हट जाना चाहिए। 9(लेखक प्रख्यात स्तंभकार हैं) यह कहना उचित होगा कि

३५ साल की उम्र के ज्यादातर लोग छात्रों के प्रति एक मिला-जुला रवैया रखते हैं। एक स्तर पर हम सभी युवाओं की ऊर्जा की प्रशंसा करते हैं और बड़े मन से अपने उस दौर को याद करते हैं जब हम बड़ी-बड़ी जिम्मेदारियों से मुक्त थे। जो लोग देश के भविष्य के बारे में सोचने के आदी हैं वे



युवाओं को भविष्य के रूप में देखते हैं और उनकी मनोदशा युवा ऊर्जा के संदर्भ में बहुत ज्यादा सकारात्मक सोचने की होती है। इसी के साथ छात्र जीवन की पहचान माने जाने वाले और हमेशा उसके साथ जुड़े रहने वाले लापरवाह रवैये को लेकर अधीर हो जाने की संभावना भी होती है।

१९७१ के दशक में मेरे अपने छात्र जीवन के दौरान बड़े लोगों के बीच युवाओं को अक्सर लंबे बाल वाले उजड़ लड़के का ताना सुनना पड़ा था। शायद उन बड़े लोगों को अपने युवा दिनों में कठिन समय का सामना करना पड़ा था। सही भी है कि जो लोग १९४१ के दशक में किशोरावस्था से आगे निकले थे वे सभी अपने-अपने समय के कठिन दिनों को याद करते रहते थे। खासकर द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान। यहां मैं मुख्य रूप से यूरोपीय लोगों की बात कर रहा हूँ या उन लोगों की जिन्होंने सांप्रदायिक दंगों और भारत के विभाजन का दर्द डोला था। 9कुल मिलाकर छात्रों को संदेह का लाभ मिलता रहा है। मुझे १९६१ के दशक के अंतिम दौर की याद आती है जब व्यक्तिगत और राजनीतिक, दोनों स्तरों पर लिबरेशन यानी मुक्ति की नई-नई समझ उभरी थी। इसके साथ यह भावना भी जुड़ गई थी कि भ्रमित और राह से भटके लोगों को भी एक दूसरा अवसर मिलना चाहिए। छात्रों के प्रति इस मिले-जुले भाव ने अच्छे नतीजे दिए हैं। वियतनाम युद्ध के इर्द-गिर्द उभरी एक जवाबी संस्कृति में शामिल रहे लोगों की एक बड़ी संख्या आज सत्ता अधिष्ठान का हिस्सा हैं। उनमें से ज्यादातर (जो अब पेंशनर हो चुके हैं) अपने अतीत पर अफसोस नहीं करेंगे।

१९७१ के दशक के दौर में रेडिकल पालिटिक्स के अलग-अलग रूप से रूबरू होने वाले व्यक्ति के रूप में मैं यह अवश्य स्वीकार करूंगा कि मुझसे चीजों को समझने में कुछ गलतियां भी हुईं। जब मैं कालेज प्रशासन अथवा सरकार की ओर से छात्रों के खिलाफ कार्रवाई के बारे में पढ़ता हूं तो मुझे इंग्लैंड में १९७१ के दशक के अंतिम दौर में एक छात्र के रूप में अपने दिनों की याद आ जाती है। एक वाक्या मेरे स्मृति पटल पर अभी भी अंकित है। पैसे की तंगी का सामना कर रही सरकार ने जब उच्च शिक्षा में खर्च पर कटौती करने का निर्णय लिया तो उसके विरोध में छात्र आंदोलन पर उतर आए। आंदोलन के दौरान कई संस्थानों में प्रशासनिक कार्यालयों में छात्रों ने कब्जे कर लिए। ऐसे ही एक आंदोलन का नेतृत्व मेरे लैट का साथी कर रहा था। वह अब एक द. अप्रीकी विश्वविद्यालय में एक गंभीर प्रोफेसर हैं। कालेज के अधिकारियों ने पहले तो छात्र नेताओं के खिलाफ अदालत की मदद लेकर मामला हल करने की कोशिश की। इसके तहत उनसे प्रशासनिक कार्यालयों से दूर रहने के लिए कहा गया। १७जब इसका कोई नतीजा नहीं निकला तो अधिकारी मामले को उच्च न्यायालय ले गए। वहां अदालत की अवमानना के आरोप लगाए गए। अगर ये आरोप साबित हो जाते तो इसका मतलब होता उल्लंघन करने वाले छात्रों को जेल होना। मेरे मित्र, जिन्होंने खुद ही अपनी छवि एक क्रांतिकारी के रूप में गढ़ ली थी, इस घटनाक्रम से बहुत प्रसन्न थे। उनकी दिली चाहत थी कि उन्हें जेल भेज दिया जाए, क्योंकि इससे उनका राजनीतिक कद बहुत अधिक बढ़ जाता। मेरे मित्र का यह दुर्भाग्य था कि उच्च न्यायालय के जिस न्यायाधीश के समक्ष यह मामला आया वह जमीन से जुड़े हुए व्यक्ति थे।

न्यायाधीश महोदय के पास अच्छा हास्यबोध था। उनका रवैया बच्चे तो बच्चे हैं वाला था। उनके हिसाब से विरोध कर रहे छात्रों को बस आंख दिखाने की जरूरत है और अगर तब भी बात न बने तो उन्हें सख्ती से डांट दिया जाना चाहिए। जब अभियोजन पक्ष ने उनके समक्ष वे पर्चे प्रस्तुत किए जो छात्र बांट रहे थे तो उन्होंने उनमें से कुछ पर्चों पर निगाह डाली और अपना सिर उठाए बिना कहा-बड़ी आकर्षक बातें लिखी हैं और उससे भी आकर्षक स्पेलिंग हैं। मेरे मित्र बहुत निराश थे कि जज ने उन्हें इस सलाह के साथ छोड़ दिया कि टर्म ब्रेक के लिए वह घर जाएं। साफ है कि मेरे मित्र के हाथ से शहीद होने का मौका छिन गया था। १७मुझे अक्सर आश्चर्य होता है कि क्या जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय की हाल की परेशानी का समाधान कुछ अधिक सम्मानित शिक्षकों द्वारा निकाला जा सकता था। वे विरोध प्रदर्शन करने वाले छात्रों को चाय पर बुलाते और उन्हें वास्तविक दुनिया को समझने की सलाह देते। दुखद यह रहा कि इस बार छात्र सभी सीमाएं लांघ गए।

अगर वे अपनी मांग को हास्टल के हर कमरे में मुफ्त और तेज चलने वाला इंटरनेट उपलब्ध कराने तक सीमित रखते तो यह समझ में आता, बल्कि इसका स्वागत भी किया जाता, लेकिन दुर्भाग्य से उन्होंने फांसी पर लटकाए जा चुके कश्मीरी आतंकी अफजल गुरु के महिमामंडन का फैसला कर अशांति को जन्म देने का काम किया। उनकी इच्छा भारत को बर्बाद होते देखने की भी थी। राजनीतिक अतिवाद का यह कृत्य उन लोगों के लिए

सामान्य-स्वाभाविक बात हो सकती है जो यह मानते हैं कि नरेंद्र मोदी सरकार को परेशान करने वाला हर मामला अपनी अहमियत रखता है। जेएनयू का कैंपस एक स्वतंत्र-स्वायत्त गणराज्य नहीं है। यह समाज का हिस्सा है। इस प्रकरण ने सरकारी सहायता पर पलने के बावजूद राष्ट्र के बुनियादी मूल्यों का निरादर करने वाले छात्रों की नकारात्मकता को सामने ला दिया है। शैक्षिक संस्थानों के कैंपस हमेशा छात्रों और शिक्षा से जुड़े लोगों को अतिरिक्त सहूलियत देते हैं। रचनात्मकता की एक पूर्व शर्त बेचौनी है, लेकिन इसी समय एक लक्ष्मण रेखा भी होती है जो बुनियादी रचनात्मकता की बाहरी सीमाओं का निर्धारण करती है। हमारे विचार से जेएनयू के जिन छात्रों ने इस लक्ष्मण रेखा का उल्लंघन किया वे न केवल भारत को निशाना बनाने के अपराध के दोषी हैं। बल्कि उन्होंने सामान्य संवेदनशीलता और समझदारी का भी अपमान किया है। उन्होंने अपनी विशेषता के अहंकार का परिचय दिया है और अगर ऐसी हरकतों की नकल को रोकना है तो उनका कृत्य कुछ न कुछ अनुशासनात्मक कार्रवाई की मांग करता है। पिछले अनेक वर्षों से जेएनयू नारेबाजी और बुनियादी कट्टरपंथ का अड्डा बनकर रह गया है। यह सही समय है जब इसे मुख्यधारा में वापस लाने के लिए कुछ अतिरिक्त प्रयास किए जाएं। एक कैंपस में ज्ञान का आदान-प्रदान ही होना चाहिए। इसे चरमपंथ की नर्सरी के रूप में स्थापित होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इस अकादमिक साफ-सफाई को कैसे सबसे अच्छे ढंग से अंजाम दिया जा सकता है, यह देखना शिक्षा प्रतिष्ठान का दायित्व है। नाराज राजनेताओं ने अपना नजरिया टीवी पर व्यक्त कर दिया है, अब उन्हें पीछे हट जाना चाहिए।

○

लेख राज एक्सप्रेस में प्रकाशित है।

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय से उठते सवाल

- उमेश चतुर्वेदी

श जधानी दिल्ली में लाल दुर्ग के तौर पर विख्यात जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय की हालिया घटनाओं पर सियासी हंगामे ने देश का ध्यान पहली बार अपनी ओर आकर्षित किया है। संभवतः यह पहला मौका है, जब अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में लगे देशविरोधी नारे विश्वविद्यालय की चारदीवारी के बाहर ठोस सबूतों के सामने आए हैं। हकीकत तो यही है कि विचारों के लोकतंत्र के नाम पर ऐसा काफी पहले से होता रहा है। चूंकि इस बार ठोस सबूतों के लिए कुछ लोगों ने तैयारी की और इसकी वीडियो रिकॉर्डिंग की, इसलिए लाल दुर्ग की यह कड़वी हकीकत दुनिया के सामने आई है। यह बात और है कि कभी इसी विश्वविद्यालय की चारदीवारी से राजनीति की दुनिया में कदम रखने वाले मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के मौजूदा महासचिव सीताराम येचुरी इस वीडियो पर ही सवाल उठा रहे हैं। सवाल तो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सचिव डी राजा और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के पूर्व महासचिव प्रकाश करात भी उठा रहे हैं। खबरों की दुनिया में एक कहावत कही जाती है कि तसवीरें कभी झूठ नहीं बोलतीं। इन तसवीरों को गलत बताने की चाहे जितनी भी कोशिश की जा रही हो, लेकिन येचुरी, करात और डी राजा के सामने यह कहावत ही संकट बन कर खड़ी हो गई है। उनकी अपीलों को विश्वविद्यालय की चारदीवारी के भीतर भले ही समर्थन मिल रहा हो, लेकिन जिस मुनिरका, बेरसराय और किशनगढ़ के पुश्तैनी गांवों पर जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय बना है, उनमें उनकी अपीलों और दलीलों का असर नहीं हो रहा है। इन गांवों में विश्वविद्यालय में लगे देश विरोधी नारों को लेकर जिस तरह से उबाल उठा है, उससे भारतीय वामपंथी राजनीति की सीमाएं भी उजागर हुई हैं। इस गुस्से ने साफ किया है कि भारतीय वामपंथी राजनीति किस कदर स्थानीय सोच और संस्कृति से दूर रही है।

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर अतीत में कई ऐसे काम हुए हैं, जिन्हें इस विश्वविद्यालय की चारदीवारी के बाहर शायद ही मान्यता दी जाती। २००४ में चीन ने अपने नक्शे पर अरुणाचल प्रदेश को भारत से अलग चीन का हिस्सा बता दिया था। उस वक्त जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्रसंघ में चुने गए कुछ पार्षदों ने इसके खिलाफ संकल्प पेश किया था। इस संकल्प में चीन की साम्राज्यवादी नीति के खिलाफ भी प्रस्ताव रखा गया। अब्बल तो देश समर्थक यह संकल्प अगर कहीं रखा जाता तो उसका शायद ही कोई विरोध करता। लेकिन जवाहर लाल नेहरू छात्रसंघ में इसका जोरदार विरोध हुआ और यह प्रस्ताव गिर गया। उल्टे ऑफ द रिकॉर्ड चीन के कदम को सही ठहराया गया। इसी तरह कश्मीर में विदेशी दखल के खिलाफ भी संकल्प पेश किया गया तो उसका भी जोरदार विरोध किया गया। और उसे भी पारित नहीं होने

दिया गया। २०१० के जून में जब छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा में सीआरपीएफ के ७६ जवानों को घात लगाकर नक्सलियों ने मार गिराया, तब भी इसी विश्वविद्यालय में इसे भारतीय साम्राज्यवाद के खिलाफ नक्सलवाद की जीत के तौर पर शौर्य दिवस के तौर पर मनाया गया। तब ऐसा करते वक्त इस विश्वविद्यालय के शौर्य दिवस मनाने वाले कार्यकर्ता भूल गए कि मारे गए ज्यादातर सिपाही उसी तबके से आते हैं, जो मजलूम है और जिंदगी की जरूरतों को पूरा करने के लिए नौकरियां करने को मजबूर है। दो वक्त की रोटी का उसका भी संघर्ष उतना ही कठिन है, जितना उन दलितों और आदिवासियों के लिए है, जिसके पक्ष में जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के बौद्धिक कहे जाने वाले छात्र नक्सलवाद का समर्थन करते रहे हैं। सवाल यह है कि क्या जिस वाम विचारधारा के छात्रों ने समय-समय पर ऐसे कदम विश्वविद्यालय की सीमा में उठाए हैं, क्या उनके ही नेताओं के हाथ केंद्र या छत्तीसगढ़ राज्य की सत्ता आ जाए तो वे क्या कश्मीर को आजाद हो जाने देंगे..क्या नक्सलियों को खून बहाने की अनुमति देते रहेंगे..सिंगूर और नंदीग्राम में तो सीपीएम की अगुआई वाली बुद्धदेव दास गुप्ता की पश्चिम बंगाल सरकार ने नक्सलियों के खिलाफ वैसे ही कदम उठाए थे, जैसे वाम विचार विरोधी दलों की सरकारें उठाती रही हैं। जब इन संदर्भों में जेएनयू के अंदर होने वाले कार्यों की परख और मीमांसा की जाती है तो निश्चित तौर पर राजनीतिक संदेह बढ़ते हैं और उन संदेहों की सूई एक ही तरफ बढ़ती है।

लोकतांत्रिक नवाचार के नाम पर जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय की सीमा के अंदर यूटोपियाई अंदाज में काम होते रहे हैं, सोच भी यूटोपियाई होती रही है। इस विश्वविद्यालय में वह सब कुछ होता है, जिसे कम से कम देश के समाज और संस्कृति में सर्वमान्य मान्यता नहीं है। बहरहाल मौजूदा विवाद बेशक वाम विरोधी खेमों की तैयारी के बाद दुनिया के सामने आया है। लेकिन इसका कुछ पक्ष ऐसा भी है। जिसकी जानकारी अभी पूरी दुनिया को नहीं है। नौ फरवरी २०१३ को अफजल गुरु को फांसी पर कांग्रेस सरकार ने लटकाया था। तब केंद्र में मनमोहन सिंह की सरकार थी और सुशील कुमार शिंदे गृहमंत्री थे। अफजल गुरु के साथ नाइंसाफी को लेकर तभी से जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में डीएसयू नामक छात्र संगठन विरोध जताता रहा है। उसके बाद से ही हर साल नौ फरवरी को यह संगठन अफजल गुरु की याद में विश्वविद्यालय में कार्यक्रम करता रहा है। दिलचस्प बात यह है कि यह संगठन जेएनयू में प्रतिबंधित है। इतना ही दिलचस्प यह भी जानना होगा कि इस कार्यक्रम के लिए डीन ऑफ स्टूडेंट वेलफेयर से अनुमति सांस्कृतिक कार्यक्रम के तौर पर ली जाती रही है। प्रतिबंधित होने के बावजूद इस बार दो फरवरी को ही इस संगठन ने विश्वविद्यालय में कार्यक्रम को लेकर पर्चा दाखिल किया। नौ फरवरी को कार्यक्रम करने के लिए उसकी तरफ से विश्वविद्यालय प्रशासन से अनुमति मांगी। अनुमति को लेकर विश्वविद्यालय में दो तरह के विचार हैं। डीन ऑफ स्टूडेंट वेलफेयर का कहना है कि उन्होंने अनुमति नहीं दी तो एसोसिएट डीन का कहना है कि उन्होंने अनुमति दी। फिर सवाल यह है कि प्रतिबंधित होने के बावजूद डीएसयू पर्चे बांटने और उसमें अपने पदाधिकारियों का नाम और फोन नंबर देने में कामयाब कैसे हुआ और प्रतिबंधित संगठन के खिलाफ विश्वविद्यालय प्रशासन ने कार्रवाई क्यों नहीं की। फिर सवाल यह भी है कि कांग्रेस उपाध्यक्ष राहुल गांधी विश्वविद्यालय में जाकर छात्रों के समर्थन में धरना देते वक्त क्या इस बात को मान रहे हैं कि उनकी पार्टी की सरकार ने अफजल गुरु के साथ नाइंसाफी की..वक्त आ गया है कि इन सवालों से भी मुठभेड़ किया जाय और इस विश्वविद्यालय को राजनीति का अखाड़ा बनाने की बजाय पठन-पाठन का केंद्र ही रहने देने में सहयोग किया जाय।

जनता से बेघर वामपंथियों का रैन-बसेरा है जेएनयू

- शिवानन्द द्विवेदी

दुनिया ने टुकराया है, इक तुमने (जेएनयू) अपनाया है! इस गीत की पंक्तियों को गुन-गुनाकर चाहें तो वामपंथी अपना गम हल्का कर सकते हैं। वामपंथ की राजनीति एवं उनके दलीय संगठनात्मक ढाँचे का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि दुनिया के कमोबेश सभी लोकतांत्रिक देशों की जनता ने वामपंथी दलों एवं उनकी विचारधारा को लोकतंत्र के अनुकूल नहीं मानते हुए, सिरे से नकार दिया है। यानी दो टूक कहें तो जहाँ भी लोकतंत्र की सुगंध आई वहाँ से वामपंथी काफूर कर दिए गये! भारतीय लोकतंत्र में भी आज वामपंथी दलों का जनप्रतिनिधित्व और जनादेश में भागीदारी नगण्य ही है। जबकि यह भी एक तथ्य है कि इसी सहिष्णु देश भारत ने दुनिया में पहली बार वामपंथियों को लोकतान्त्रिक ढंग से राजनीति करने और सत्ता(केरल में) तक पहुँचने का पहला अवसर दिया था। यह अलग बात है कि अपने वैचारिक प्रतिबद्धता की वजह से वे लोकतंत्र के माहौल में खुद फिट नहीं कर पाए। जनादेश के पैमाने पर बुरी तरह पिट चुकी वामपंथी दलों की राजनीतिक हैसियत का प्रमाण यही है कि जहाँ केरल, पश्चिम बंगाल जैसे राज्यों में उनकी स्थिति कमजोर हो रही है वहीं उत्तर प्रदेश एवं बिहार जैसे राज्यों में आज कोई उनका नामलेवा नहीं है। भारत के सभी पाँच-छः राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के बीच वामदलों की स्थिति बेहद कमजोर नजर आती है। दुनिया में कम्युनिस्टों के बुरे हथ्र का प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि महज नौ सीटों वाली मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी दुनिया के सभी लोकतांत्रिक देशों के बीच सबसे बड़ी कम्युनिस्ट पार्टी है। अर्थात्, भारत में जिसकी हैसियत किसी गिनती में नहीं वो दुनिया की सबसे बड़ी कम्युनिस्ट पार्टी है! अगर सभी गैरलोकतांत्रिक देशों को भी मिलाकर पूरी दुनिया की बात करें तो माकपा से बड़ी कम्युनिस्ट पार्टी सिर्फ और सिर्फ चाइना की कम्युनिस्ट पार्टी है। परस्पर विरोधाभास भरा ये तथ्य दुनिया के तमाम वामपंथी दलों की दुर्दशा का साफ चित्रण करता है। लोकतांत्रिक देशों के बीच दुनिया की सबसे बड़ी कम्युनिस्ट पार्टी माकपा की लोकसभा की कुल ५४३ सीटों में से महज ६ सीटें हैं। वहीं भारत की सबसे पुरानी कम्युनिस्ट पार्टी भाकपा की लोकसभा में महज १ सीटें हैं। बड़ा सवाल ये है कि विचारधारा के नाम पर आकर्षक लफाजियों की पोथी लेकर ढोने वाले इन वामपंथी राजनीतिक दलों की स्थिति जनता के बीच जाते ही इतनी निरीह क्यों हो जाती है? आखिर वो क्या कारण हैं कि दुनिया के किसी एक लोकतंत्र ने इनको अथवा इनकी विचारधारा को जनादेश के कटघरे में सही नहीं माना और नकार दिया है?

अब चूँकि जनता के बीच की राजनीति से वामपंथी लगभग खारिज हो चुके हैं तो इनका बौद्धिक ठौर-ठिकाना जेएनयू बचा है। देश की राजधानी के इसी ठिकाने से वामपंथी राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय सारी राजनीति कर लेना चाहते हैं। यह ठिकाना इनको साठ के दशक के उत्तरार्ध में कांग्रेस(इंदिरा) द्वारा उपहार स्वरूप दिया गया था। चूँकि जेएनयू की स्थापना के पीछे उसे वाम अखाड़ा बनाने की सुनियोजित साजिश जेएनयू की स्थापना के बाद की तत्कालीन इंदिरा गांधी की कांग्रेस सरकार द्वारा रची गयी थी। देश की राजधानी से अपने अनुकूल बौद्धिक माहौल तैयार करने, अपने वैचारिकता के अनुकूल किताबों के कंटेंट तय करने, अपने अनुकूल इतिहास गढ़ने के लिए जेएनयू की स्थापना की गयी थी। सत्ता पोषित सुविधाभोग और विलासी जीवन पद्धति जेएनयू को विरासत में मिली। बौद्धिक मोर्चे पर कांग्रेस के अनुकूल माहौल बनाये रखने के लिए तत्कालीन इंदिरा सरकार ने जेएनयू नामक इस प्रकल्प को स्थापित किया। अब सवाल है कि आखिर दिल्ली जैसी जगह जहाँ एक वामपंथी विधायक तक की राजनीतिक हैसियत नहीं बन पाई है, वहाँ जेएनयू का यह किला 'लाल-सलाम' के नारों से दशकों तक कैसे अभेद बना रहा है? इस सवाल का जवाब साठ के दशक के उत्तरार्ध एवं सत्तर के दशक की शुरुआत में जाने पर मिल जाता है। दरअसल यह वह दौर था जब इंदिरा गांधी खुद के लिए ही कांग्रेस में महफूज नहीं महसूस कर रहीं थीं। कांग्रेस में विरोधी खेमा सिंडिकेट-इन्डिकेट के रूप में कमर कसने लगा था। गैर-कांग्रेसवाद का असर देश में यों चला कि साठ के दशक में ही देश के दस राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकार बन चुकी थी। इंदिरा की स्वीकार्यता और नेहरू के विरासत की आभा भी कमजोर पड़ने लगी थी। चूँकि इंदिरा गांधी को यह आभास हो चुका होगा कि अब राजनीति और सत्ता में बने रहना केवल नेहरू की पारिवारिक विरासत के नाम पर सम्भव नहीं है। लिहाजा वे विकल्पों पर काम शुरू कर चुकी थीं। साठ के दशक के अंतिम दौर में कांग्रेस में इंदिरा के लिए ऐसी स्थिति तक आ गयी कि उन्हें सरकार चलाने के लिए वामपंथियों की मदद लेनी पड़ी और इसके एवज में कम्युनिस्टों ने भी अकदामिक संस्थाओं पर कब्जा करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी। दूसरी तरफ जनसंघ आदि का विस्तार भी देश में होने लगा था। वोट अब बैंक की शक्ल में आसानी से कांग्रेस के झोले में जाता नहीं दिख रहा था। परिणामतः इंदिरा गांधी ने सेकुलरिज्म बनाम साम्प्रदायिकता के मुद्दे पर भरोसा दिखाया। हालांकि हिंदुत्व की राजनीति के जवाब में साम्प्रदायिकता का विमर्श तो इंदिरा देश में चलाना चाहती थीं लेकिन यह काम वो सीधे कांग्रेस की बजाय कुछ अन्य चेहरों के भरोसे करना चाहती थीं। चूँकि इंदिरा को इस बात का डर जरूर रहा होगा कि यदि हिंदुत्व को साम्प्रदायिकता के तौर पर प्रचारित करने का काम खुद कांग्रेस करने लगेगी तो कहीं हिन्दू ध्रुवीकरण कांग्रेस के खिलाफ न हो जाय। अतः प्रत्यक्ष जोखिम इंदिरा लेना नहीं चाहती थीं। हिंदुत्व के बहाने साम्प्रदायिकता पर विमर्श तो चलाना ही था और इसका काम जेएनयू में अपने लोगों को बिठाकर इंदिरा ने कम्युनिस्टों के माध्यम से उन्हें सौंप दिया। अपने अनुकूल विमर्श को मुख्यधारा के एजेंडे में लाने का इंदिरा गांधी का यह तरीका बिलकुल अंग्रेजों जैसा था। खैर, मलाई खाने की आस में कम्युनिस्ट दलों ने इंदिरा के साथ मिलकर अहम पदों के बदले कांग्रेसी एजेंडे को संस्थाओं के माध्यम से आगे बढ़ाने का काम उन्होंने बखूबी सम्हाल लिया। जेएनयू

के प्रोफेसर उसी समय से आजतक वामपंथ की खोल ओढ़कर देश में हिंदुत्व को साम्प्रदायिकता बताने की किताबें, लेख, रीसर्च गढ़ने लगे। जेएनयु में दाखिले और नियुक्ति का मानदंड तो वामपंथी होना लगभग परोक्ष रूप से तय हो चुका था। वैचारिक छुआछूत इतना टूस-टूस भरा गया कि इतने दशकों बाद भी वैचारिक विविधताओं का समान प्रतिनिधित्व आजतक जेएनयु में कायम नहीं हो सका है! आज स्थिति बदल रही है। जनादेश का मिजाज बदल रहा है। कांग्रेस अपने पापों की सजा भुगतने को अभिशप्त है। अतः जेएनयु में भी बदलाव स्वाभाविक है। जेएनयु में। अब दुसरी विचारधाराएँ भी स्थापित होने लगी हैं। विचारधारा थोपने का रोना रोने वाले वामपंथी यह क्यों नहीं बताते कि आखिर इन पांच दशकों में जेएनयु में वैचारिक प्रतिनिधित्व के नाम पर किसी एक विचारधारा का कब्जा क्यों रहा है? जिस दिल्ली में वे एक पार्श्व नहीं बना पाते वहां वे जेएनयु कैम्पस में किस जनाधार के आधार पर कब्जा किये बैठे रहे हैं? इस लिहाज से देखें तो लोकतांत्रिक दुनिया सहित समूचे देश से बेघर हो रहे वामपंथियों के लिए जेएनयू किसी श्रैन-बसेराश से कम नहीं है!

○

Ichowk.in पर प्रकाशित

जेएनयू में क्यों उठता है अफजल गुरु का नाम?

- आर. के सिन्हा

ज वाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी (जेएनयू) को सारा देश एक बेहद खास शिक्षा के मंदिर के रूप में देखता है। लेकिन हाल के दौर में जिस तरह की देश-विरोधी गतिविधियों की खबरें आने लगी हैं, वह चिंता पैदा करती हैं। अब ताजा मामले में जेएनयू के कुछ छात्रों ने अपने कैम्पस में संसद पर हमले के गुनहगार अफजल गुरु की बरसी मनाई और इस मौके पर देश विरोधी नारे भी लगाए गए। क्या इन्होंने कभी उस हमले में शहीद हुए लोगों को भी याद किया?

जेएनयू में ताजा आयोजन के पीछे वामपंथी संगठनों और कश्मीर के छात्र काफी एक्टिव बताए जाते हैं। बाकायदा इसके लिए कैम्पस में एक सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया। इस दौरान कैम्पस में देश विरोधी नारे लगाए गए। इससे पहले भी जेएनयू में ऐसी राष्ट्र विरोधी हरकतें होती रही हैं। अफजल गुरु की फांसी के वक्त भी यहां बवाल हुआ था। जेएनयू ने देश को बड़े-बड़े बुद्धिजीवी दिए हैं। दक्षिणपंथी और वामपंथी विचारधारा के बीच यहां हमेशा से बौद्धिक टकराव होते रहे हैं लेकिन अब जिस तरह से देश विरोधी गतिविधियां यहां पनप रही हैं उससे जेएनयू की छवि खराब हुई है। सभी को याद रखना चाहिए कि देश का संविधान अभिव्यक्ति की आजादी देश विरोधी गतिविधियों के लिए नहीं देता है। उसकी अपनी हदें होती हैं। उसका उल्लंघन करना किसी भी परिस्थिति में जायज नहीं माना जा सकता।

कश्मीर पर भारतीय संसद ध्वनिमत से प्रस्ताव पारित कर चुकी है कि देश पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर के हिस्से को भारत से जोड़ेगा। इसके बावजूद जेएनयू में कश्मीर पर देश की राय से हटकर एक राय सामने आती रही है। ये तो गंभीर मसला है। अफजल को फांसी हो चुकी है। सुप्रीम कोर्ट और फिर राष्ट्रपति ने उसकी दया याचिका को खारिज किया। इसके बावजूद जेएनयू में उसकी बरसी मानने का मतलब क्या है। और वहां पर तो पाकिस्तान जिंदाबाद के भी नारे लगे।

अब इन तत्वों को पाकिस्तान की नागरिकता लेने में विलंब नहीं करना चाहिए। उन्हें जेएनयू की जगह कराची या लाहौर में दाखिला ले लेना चाहिए। भारत सरकार को भी इसमें उनकी मदद करनी चाहिए। सवाल उठता है कि जेएनयू प्रशासन देश विरोधी तत्वों पर लगाम क्यों नहीं लगाता। उसे पाकिस्तान परस्तों पर कठोर एक्शन लेना चाहिए। कश्मीर पर चर्चा या अफजल की फांसी का पाकिस्तान जिंदाबाद से कोई लेनादेना कैसे हो सकता है।

एक ओर देश का जाबाज हनुमंतथप्पा जिंदगी जीने की जद्दोजेहद से जूझ रहा था, दूसरी तरफ उसके अस्पताल से कुछ दूर जेएनयू में वतन को गालियां देने वाले सक्रिय हैं। एक बात समझ लेनी चाहिए हमारे इधर लंबी कानूनी प्रक्रिया के चलते ही अफजल गुरु से लेकर याकूब जैसे देशद्रोहियों को फांसी हुई। तो फिर इन्हें महिमा मंडित क्यों किया जा रहा है। आपको याद होगा कि मेमन को फांसी हो या नहीं हो, इस सवाल पर वास्तव में देश बंट सा गया था। देश के जाने-माने लोगों ने राष्ट्रपति को पत्र लिखकर याकूब मेमन को फांसी की सजा से बचाने की अपील की थी। इनमें सीपीएम के सीताराम येचुरी, कांग्रेस के मणिशंकर अय्यर, सीपीआई के डी राजा, वरिष्ठ अधिवक्ता राम जेटमलानी, फिल्मकार महेश भट्ट, अभिनेता नसीरुद्दीन शाह, अरुणा रॉय समेत जैसे कई क्षेत्रों और राजनैतिक दलों के लोग शामिल थे।

हालांकि ये बात समझ से परे है कि मेमन के लिए तो इन खासमखास लोगों के मन में सहानुभूति का भाव पैदा हो गया था, पर इन्होंने कभी उन तमाम लोगों के बारे में बात नहीं की जो बेवजह मारे गए थे मुंबई बम धमाके में। उनका क्या कसूर था? इस सवाल का जवाब इन कथित खास लोगों के पास शायद नहीं है। जेएनयू बिरादरी ने कभी धमाकों में मारे गए लोगों को तो याद किया होगा।

पंजाब में आतंकवाद के दौर को जिन लोगों ने करीब से देखा है, उन्हें याद होगा कि तब भी स्वयंभू मानवाधिकार वादी बिरादरी पुलिस वालों के मारे जाने पर तो शांत रहती थी, पर मुठभेड़ में मारे जाने वाले आतंकियों को लेकर स्यापा करने से पीछे नहीं रहती थी। इनको कभी पीड़ित के अधिकार नहीं दिखे। इन्हे मारने वाला हमेशा ही अपना लगा। उसके मानवाधिकार और जनवादी अधिकारों पर ये आंसू बहाते रहे।

इसी तरह से जब छत्तीसगढ़ में नक्सलियों की गोलियों से छलनी कांग्रेस के शिखर नेताओं की जघन्य हत्या से सारा देश सन्न था, तब भी मानवाधिकारवादियों की तरफ से कोई प्रतिक्रिया न आना बहुत सारे सवाल छोड़ गया था। हमारे मानवाधिकारवादी आम नागरिकों के मानवाधिकारों के हनन पर तो खामोश हो जाते हैं, पर अपराधियों के मानवाधिकारों को लेकर वे बहुत जोर-शोर से आवाज बुलंद करते हैं। अरुंधति राय से लेकर महाश्वेता देवी और तमाम किस्मों के स्वघोषित बुद्धिजीवी और स्वघोषित मानवाधिकार आंदोलनकारियों के लिए अफजल गुरु से लेकर अजमल कसाब के मानवाधिकार हो सकते हैं, पर नक्सलियों की गोलियों से छलनी छत्तीसगढ़ के कांग्रेसी नेताओं के मानवाधिकारों का कोई मतलब नहीं है।

निश्चित रूप से भारत जैसे देश में हरेक नागरिक के मानवाधिकारों की रक्षा करना सरकार का दायित्व है। कहने की जरूरत नहीं है कि व्यक्ति चाहे अपराधी ही क्यों न हो, जीवित रहने का अधिकार उसे भी है, यही मानवाधिकारों का मूल सिद्धांत है। जो अधिकार अपराधियों के प्रति भी संवेदना दिखाने के हिमायती हों, वह आम नागरिकों के सम्मान और जीवन के तो रक्षक होंगे ही, पर कभी-कभी लगता है कि इस देश के पेशेवर मानवाधिकारों के रक्षक सिर्फ अपराधियों के प्रति ही संवेदनशील हैं, नागरिकों के प्रति नहीं।

आतंकवादियों के हमलों के कई मर्तबा शिकार हो चुके मनिंदर सिंह बिट्टा सही कहते हैं कि

क्या सिर्फ मारने वाले का ही मानवाधिकार है मरने वाले का कोई अधिकार नहीं है? याद नहीं आता कि पश्चिम बंगाल से लेकर आंध्र और छत्तीसगढ़ तक जो सामूहिक नरसंहार हुए हैं या दर्जनों की तादाद में सुरक्षा बलों और पुलिस के जवानों की मौत पर मानव अधिकारों के किसी पैरोकार ने संवेदना के दो शब्द भी बोले।

कुछ साल पहले झारखंड के लातेहार में नक्सलियों ने सीआरपीएफ के कुछ जवानों के शरीर में विस्फोटक लगाकर उड़ा दिया था। इस तरह की मौत से पहले कभी नहीं सुनी थी। पर मजाल है कि महाश्वेता देवी, अरुंधती राय या बाकी किसी किसी मानवाधिकारवादी या जेएनयू बिरादरी ने उस कृत्य की निंदा की हो। क्या इन जवानों के माता-पिता, पत्नी या बच्चे नहीं थे? क्या इनके कोई मानवाधिकार नहीं थे? ○

Ichowk.in पर प्रकाशित

आखिर अफजल से किनारा क्यों कर रहे हैं कन्हैया-समर्थक?

- रोहित श्रीवास्तव

कन्हैया और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की पैरवी करने वाले उन महानुभावों को बताना चाहिए कि जेएनयू में जो कार्यक्रम 'अफजल' के समर्थन में हुआ उसका समर्थन वे करते हैं या नहीं? वे देश के संविधान का आदर करते हैं या नहीं? उसके द्वारा सुनाए गए फैसलों को मानते हैं या नहीं? जितने भी लोग 'कन्हैया' के समर्थन में लिख रहे हैं। आगे आ रहे हैं, वे इस पूरे काण्ड के मुख्य किरदार 'अफजल' को बड़ी चतुराई से किनारे लगा दे रहे हैं। यकीनन अफजल जो एक आतंकवादी था, जो लोकतंत्र के सर्वोच्च मंदिर संसद पर हमले करने का दोषी था, जिसे कायदे से उसके कुकर्म के लिए तुरंत गोली मार देनी चाहिए थी, पर इस देश के संविधान और कानून के तहत उसे फांसी दी गई। उसे अपनी बात रखने का मौका दिया गया। जी हाँ, उसी के समर्थन में हुआ था जेएनयू में तथाकथित सांस्कृतिक कार्यक्रम, जिस कार्यक्रम के चलते कन्हैया की गिरफ्तारी हुई है। कन्हैया की गिरफ्तारी का विरोध करने वाले क्या जाने-अंजाने में अप्रत्यक्ष तौर पर आतंकवाद का समर्थन नहीं कर रहे हैं? क्या ऐसे कार्यक्रम आतंकवादियों के हौसलों को नहीं बढ़ाएंगे? आज अफजल है। कल कोई और आतंकवादी होगा। यह कौन सा उदाहरण स्थापित किया जा रहा है? हम ऐसे कार्यक्रमों से क्या सन्देश देना चाहते हैं? आप आतंकवाद फैलाए, हम बाहें फैलाए खड़े हैं, मोमबत्ती लिए, स्लोगन और नारों के साथ आपके बचाव में। अब ऐसे कुकृत्यों को 'देशद्रोही-कृत' क्यों न माना जाए? कन्हैया के समर्थकों को यह जरूर बताना चाहिए। ○

(१५ फरवरी, २०१६ को आईबीएन-७ की वेबसाइट पर प्रकाशित)

facebook

जेएनयू को भारत-विरोधी अड्डा बनाते रहे हैं वामपंथी!

- मनीष कुमार

यह २६ अप्रैल २००० की घटना है। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में उस वक्त भी एक सांस्कृतिक कार्यक्रम हुआ था। इसका आयोजन वामपंथी संगठन के छात्र-नेताओं ने किया था जो सीपीएम की छात्र विंग स्टूडेंट फेडरेशन ऑफ इंडिया के कार्यकर्ता थे। इसके आयोजन में विश्वविद्यालय ने भी आर्थिक सहयोग किया था। इस कार्यक्रम का नाम था "इंडिया-पाकिस्तान मुशायरा"। इसमें भारत और पाकिस्तान के शायर शामिल थे। यह कार्यक्रम एक खुली जगह पर हो रहा था। गंगा ढाबा के पास केसी मार्केट के पीछे एक ओपन एयर थियेटर में। कोई भी जाकर मुशायरे का आनंद उठा सकता था। जेएनयू के छात्रों के साथ साथ कुछ लोग बाहर से भी आए हुए थे। उस जमाने में बाहरी लोगों के आने जाने पर पाबंदी नहीं थी।

लोग मुशायरे का लुत उठा रहे थे। लेकिन अचानक वहां हंगामा मच गया। पाकिस्तान से आए एक शायर ने कुछ भारत-विरोधी बातें कह दी। कुछ लोगों ने विरोध किया। विरोध करने वालों में बाहर से आए दो शख्स सबसे मुखर थे। इन दोनों को वामपंथी छात्रों ने घेर लिया। दोनों छात्रों के बीच फंसे थे। छात्रों ने पूछा कौन हो तुम लोग .. कहां से आये हो। दोनों से जवाब मिला कि दोनों आर्मी के मेजर हैं और कारगिल में पाकिस्तानियों से लड़कर छुट्टी बिताने दिल्ली आए हैं। दोनों ने अपने आईकार्ड निकाल कर छात्रों को दिखाए। उन्होंने ये भी कहा : हम पाकिस्तानियों के मुंह से भारत की बुराई नहीं सुन सकते हैं। उनको लगा होगा कि शायद आर्मी का नाम सुन कर छात्र कुछ नहीं बोलेंगे। लेकिन, छात्रों की टोली से किसी ने कहा : मारो मारो.. ये आर्मी वाला है। फौरन कुछ छात्रों ने पीछे से दोनों पर हमला कर दिया। दोनों जमीन पर गिर गए.. फिर उठकर एक ने अपना रिवाल्वर निकाल लिया और छात्रों को पीछे जाने को कहा। वो सिर्फ रिवाल्वर दिखा रहे थे। गोली नहीं चलाई। उन्हें लगा कि छात्र पीछे हट जाएंगे और वो सुरक्षित वहां से निकल जाएंगे। लेकिन इस बीच कुछ छात्रों ने पीछे से पत्थर चलाना शुरू कर दिया। दोनों लहुलुहान हो गए। दोनों नीचे गिर गए। फिर क्या था.. छात्रों ने बहुत ही बेदर्दी से दोनों की पिटाई की। जब तक दोनों अधमरे नहीं हो गए.. तब तक वामपंथी छात्र उनकी पिटाई करते रहे। दोनों के कपड़े फाड़ कर उनके गुप्तागों पर भी वहशियाना हमला किया। जब ऐसा लगा कि दोनों मर गए तब ये छात्र वहां से निकले।

विश्वविद्यालय की सिक्योरिटी की सूचना पर पुलिस आई और कारगिल के दो हीरो के अधमरे शरीर को अपनी गाड़ी में लाद कर ले गए। इस बीच एक बात और हुई। एक टीवी

चौनल का रिपोर्टर और कैमरामैन भी वहां मौजूद था। कैमरामैन ने इस पूरी घटना को अपने कैमरे में कैद कर लिया। दोनों वहां से गंगा ढाबा पहुंच कर चाय पी रहे थे कि छात्रों का वही गिरोह वापस गंगा ढाबा पहुंच कर दोनों को घेर लिया। जबरदस्ती उनसे टेप छीने और उन्हें कैम्पस से बाहर जाने को कहा। दोनों ने काफी मिन्नतें की लेकिन उन्हें टेप नहीं मिली। रात में पता चला कि दोनों आर्मी आफिसर आईसीयू में भर्ती हैं.. उनकी हालत खराब है। शायद एक की मौत हो जाए।

सवेरे हिंदू अखबार में यह खबर छपी कि दो लोगों ने जेएनयू में घुस कर "इंडिया-पाकिस्तान मुशायरा" में विघ्न डालने की कोशिश की। साथ में वामपंथी संगठन के आयोजकों की तरफ से अखबार ने बताया कि "इंडिया-पाकिस्तान मुशायरा" को असफल बनाने के लिए दोनों को उप-प्रधानमंत्री लालकृष्ण आडवाणी ने भेजा था। मजेदार बात यह है कि इस तरह के बकवास को द हिंदू जैसे अखबार ने छाप भी दिया। इससे हुआ ये कि पाकिस्तान की मीडिया ने भी यही छपा। पाकिस्तान की मीडिया ने भारत सरकार पर यह आरोप लगाया कि योजनाबद्ध तरीके से आडवाणी ने "इंडिया-पाकिस्तान मुशायरा" को बाधित किया।

पूरे जेएनयू कैम्पस में इस घटना को लेकर तनाव रहा। जब पता चला कि कारगिल युद्ध के दो जाबाजों के साथ वामपंथी छात्रों ने यह काम किया है तो कैम्पस में तनाव बढ़ गया। विद्यार्थी परिषद ने घटना के अगले दिन एक बड़ा जुलूस निकाला। एक दिन बाद सारे अखबारों में सही कहानी आई। तब दुनिया ने जाना कि जेएनयू में दो जांबाज आर्मी ऑफिसर के साथ क्या हुआ था। उस दौरान संसद का सत्र चल रहा था। संसद में यह मामला उठा। मेजर जनरल खंडूरी, राजीव प्रताप खूड़ी और साहेब सिंह वर्मा ने संसद में इस मामले की जांच की मांग की। संसद में जब यह आरोप लगाए जा रहे थे कि जेएनयू के अंदर राष्ट्रविरोधी तत्वों पर लगाम लगाना जरूरी है तब लोकसभा में सोनिया गांधी के साथ साथ सभी वामपंथी नेता मौजूद थे लेकिन किसी ने भी कुछ नहीं कहा। इस बीच खबर आई कि दोनों की तबीयत बिगड़ रही है तो तत्कालीन रक्षा मंत्री जार्ज फर्नांडीस उनसे मिलने अस्पताल पहुंचे।

इसके बाद जेएनयू में वामपंथियों को लगा कि मामला बिगड़ रहा है तो विश्वविद्यालय के वामपंथी प्रोफेसर हमलावर छात्रों के समर्थन में आ गए। उनकी तरफ से एक पर्चा भी बांटा गया। जिसमें बताया गया कि पाकिस्तानी शायर ने कोई गलत बात नहीं कही और दूसरा यह कि वामपंथी छात्रों की कोई गलती नहीं है क्योंकि दोनों आर्मी आफिसर ने शराब पी रखी थी और बिना अनुमति के कैम्पस में घुस कर हंगामा किया। अगले दो तीन दिन तक हर अखबार में खबरें छपी। अखबारों में बड़े बड़े संपादक ने संपादकीय लिखा। पुलिस ने एफआईआर दाखिल की। उस वक्त लौहपुरुष आडवाणी ने भी कोई एक्शन नहीं लिया क्योंकि उन्हें लगा कि अगर वो छात्रों के खिलाफ कोई कार्रवाई करते हैं तो मीडिया और बुद्धिजीवी वर्ग सरकार के विरोध में लामबंद हो जाएंगे। इसी डर से इस केस में आज तक न कोई गिरफ्तार हुआ और न ही किसी को सजा मिली।

इस घटना को मैं इसलिए बता रहा हूं क्योंकि जवाहरलाल नेहरू युनिवर्सिटी फिर से विवाद

में है। पहली बार कम्यूनिस्टों की हकीकत सामने आई है क्योंकि भारत-विरोधी नारेबाजी और भाषणबाजी का वीडियो सामने आ गया। वैसे, जेएनयू में भारत-विरोधी नारे कई सालों से लग रहे हैं। वामपंथी संगठन भारत के टुकड़े टुकड़े करने की बात करते रहे हैं। भारतीय सेना को भला-बुरा कहना यहां आम बात है। यह कोई नई बात नहीं है। अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर इस कैम्पस में आंतकवादियों और कश्मीरी अलगाववादियों को बुलाकर प्लेफ्टफार्म दिया जाता रहा है। इससे पहले भी आजम इंकलाबी के आने पर जेएनयू में हंगामा हुआ था। सबसे दुखद बात यह है कि भारत-विरोधी गतिविधियों को जेएनयू के वामपंथी प्रोफेसरों का भरपूर समर्थन मिलता है। सच्चाई ये है जेएनयू में देशभक्ति को अवगुण माना जाता है।

हाल की घटना के दो दिन बाद तक हर वामपंथी संगठन बचाव में दलील दे रहे थे जेएनयू में अभिव्यक्ति की आजादी है.. छात्रों के विचारों को कुचला नहीं जा सकता है.. दो दिन तक किसी ने एक बार भी पाकिस्तान जिंदाबाद के नारे की निंदा नहीं की। किसी ने ये भी नहीं कहा कि ये वामपंथी छात्र नहीं हैं। लेकिन पुलिस की कार्रवाई के बाद इनकी अकल ठिकाने आई है। अब ये भारत-विरोधी नारेबाजी की निंदा करते नजर आ रहे हैं। इसकी वजह यह नहीं कि उनका हृदय-परिवर्तन हुआ है बल्कि जिस तरह से वे रंगे हाथ पकड़े गए हैं और देश भर में इनकी थू-थू हो रही है उसमें बचने का कोई रास्ता नहीं बचा है। वर्ना ये फिर झूठ बोलकर खुद को पाक-साफ साबित करने की कोशिश करते। जैसा कि एक फर्जी वीडियो को दिखा कर यह भ्रम फैलाने की कोशिश हो रही है कि पाकिस्तान जिंदाबाद का नारा देने वाले बाहरी लोग थे या परिषद के लोग थे। लेकिन, आज के इस जमाने में इस तरह की घटिया-कलाबाजी ज्यादा देर तक टिक नहीं सकती है। दरअसल, लोगों को भ्रमितकर राजनीति चमकाना इनकी पुरानी आदत है।

○

मनीष कुमार की फेसबुक वाल से

वामपंथी विचारधारा का स्याह चेहरा

- पीयूष द्विवेदी

कि तनी बड़ी और क्रूर विडंबना है कि एक तरफ जिस जम्मू-कश्मीर सीमा की सुरक्षा के लिए देश के दस जवान सियाचिन की बर्फ में दबकर अपनी जान गवां देते हैं, वहीं दूसरी तरफ उनकी शहादत के कुछ रोज बाद ही देश के एक तथाकथित प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थान जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) में उसी कश्मीर की आजादी, भारत की बर्बादी और अफजल गुरु के समर्थन जैसे देश विरोधी नारे लगने लगते हैं।

दरअसल पूरा मामला कुछ यूं है कि विगत 90 फरवरी को जेएनयू कैम्पस के कुछ दलित, अल्पसंख्यक और कश्मीरी विद्यार्थियों द्वारा संसद हमले के फांसी पर लटकाए जा चुके गुनाहगार अफजल गुरु की तीसरी बरसी पर सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया, जिसका अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् द्वारा कड़ा विरोध जताते हुए इस सम्बन्ध में प्रशासन से शिकायत की गई।

स्वाभाविक रूप से प्रशासन द्वारा उन छात्रों के इस देश विरोधी कृत्य पर रोक लगा दी गई। बस फिर क्या था! उन विद्यार्थियों द्वारा प्रशासन के निर्णय के विरोध के नाम पर न केवल हुड़दंग शुरू कर दिया गया, बल्कि कश्मीर की आजादी और भारत की बर्बादी के नारे भी लगाए जाने लगे। 'कश्मीर मांगे आजादी', 'कश्मीर की आजादी तक जंग रहेगी, भारत की बर्बादी तक जंग रहेगी' जैसे देश विरोधी नारे लगा रहे इन छात्रों का जब एबीवीपी के छात्रों ने जेएनयू छात्रसंघ के संयुक्त सचिव के नेतृत्व में विरोध किया तो न केवल उनके खिलाफ भी नारे लगाए गए, बल्कि कट्टा आदि हथियार दिखाकर उन्हें धमकाया भी गया।

अब प्राप्त खबरों के अनुसार, नारे लगाने वाले उन छात्रों का यह कहना तो और भी चकित करता है कि संविधान द्वारा मिली अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के तहत ही उन्होंने अफजल गुरु और जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रंट के एक संस्थापक मकबूल भट की याद में उस सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया था और यदि एबीवीपी ने प्रशासन से कह कर उस पर रोक नहीं लगवाई होती तो वे हंगामा नहीं करते। अर्थात् यह कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर उन्हें यदि देश विरोधी गतिविधियों को करने दिया जाता तो वे ये हंगामा नहीं होता। अब इन छात्रों को कौन समझाए कि जिस संविधान ने उन्हें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे मौलिक अधिकार दिए हैं, उसी ने बतौर देश के नागरिक उनके लिए कुछ मौलिक कर्तव्य भी निर्धारित किए हैं और उन्हीं कर्तव्यों में से एक 'राष्ट्र की एकता और अखण्डता को अक्षुण्ण' रखना भी है, जिसका वे पालन नहीं कर रहे। अब संविधान के अधिकार अपनाएं और कर्तव्यों को छोड़ दें, ऐसे दोहरे मानदंड तो कत्तई स्वीकार्य नहीं हैं। इनका एक विरोधाभास यह है कि जिस संविधान द्वारा दिए गए एक अधिकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के दम पर ये छात्र 'भारत

की बर्बादी' के नारे जैसी देश विरोधी गतिविधियाँ तक संचालित करने की हिम्मत दिखा रहे हैं, उसी संविधान की एक कार्यस्थली यानी संसद पर हमला करने वाले अफजल गुरु का समर्थन भी कर रहे हैं। हालांकि ये पहली बार नहीं है जब जेएनयू के छात्रों पर देशविरोधी हरकतें करने का आरोप लगा है। अभी हाल ही में जेएनयू के वामपंथी छात्रों ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को निशाना बनाकर बेहद अपमानजनक और भद्दे नारे लगाए थे। ३० जनवरी को वामपंथी छात्र संगठन आईसा और केवाईएस के छात्र हैदराबाद यूनिवर्सिटी के छात्र रोहित वेमुला की मौत को लेकर दिल्ली में आरएसएस दतर के बाहर प्रदर्शन कर रहे थे। तब इनपर पुलिस ने कार्रवाई की थी तो उसे इन्होंने अभिव्यक्ति के हनन से लेकर जाने क्या-क्या बताया था। स्पष्ट है कि इन छात्रों का विरोध पूरी तरह से तर्क और विवेक से हीन और मृतप्राय हो चुकी अपनी वाम विचारधारा को चर्चा में लाने के एजेंडे पर आधारित है।

यह सर्वविदित है कि जेएनयू वामपंथियों का गढ़ रहा है और फिलहाल देश में वही एक ऐसी जगह है जहाँ वामी समुदाय का कुछ अस्तित्व भी है, अन्यथा पूरे देश में इस विचारधारा को छात्र स्तर से लेकर शासन के स्तर तक मतदाताओं द्वारा पूरी तरह से खारिज किया जा चुका है। और अब तो जेएनयू में भी इनकी सत्ता में सेंध लगने लगी हैं। विगत वर्ष के छात्रसंघ चुनावों में अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् का संयुक्त सचिव की सीट पर कब्जा करना इसको पूरी तरह से स्पष्ट करता है।

कुल मिलाकर वाम विचारधारा पूरी तरह से जनता से दूर किस ऑफ लव और महिषासुर को महापुरुष बनाने जैसे जाने किन आसमानी मुद्दों में गुम है और इसी नाते वो दिन ब दिन खारिज हो रही है। लेकिन बावजूद इसके वो स्वयं में सुधार करने की बजाय चर्चा में आने के लिए अफजल गुरु के समर्थन, कश्मीर की आजादी और भारत की बर्बादी जैसे देश विरोधी कृत्य करने तक से पीछे नहीं हट रहे। अब उन्हें को कौन समझाए कि ऐसे कृत्यों से उनका तो कोई लाभ नहीं होगा, पर देश की छवि अवश्य खराब होगी और देश के दुश्मनों को इसे घेरने का मौका मिलेगा। गौरतलब है कि इन छात्रों के इस विरोध प्रदर्शन के समर्थन में पाकिस्तान में बैठा भारत का सबसे बड़े दुश्मन हाफिज सईद का आना इसी बात का उदाहरण है।

अब जो भी हो, पर इतना तो स्पष्ट है कि ये छात्र सबकुछ जानते-समझते हुए भी देशविरोधी गतिविधियां करते हैं, अतः इनपर सख्त से सख्त कार्रवाई करके ही इन्हें रास्ते पर लाया जा सकता है।

○

iChowk.in पर प्रकाशित लेख

लेखक के ब्लॉग 'जिज्ञासा' से साभार

मुख्यधारा की राजनीति का थियेटर बना जेएनयू

- प्रमोद जोशी

दिल्ली में दो जगह भारत विरोधी नारे लगे। इसके पहले कश्मीर से अकसर खबरें आती थीं कि वहाँ भारत विरोधी नारे लगे या भारतीय ध्वज का अपमान किया गया। कश्मीर के साथ पूरे देश का अलगाव अच्छी तरह स्पष्ट है। इस अलगाव का विकास हुआ है। जो स्थितियाँ १९४७ में थी वैसे ही आज नहीं हैं। इसमें नब्बे के दशक में चले हिंसक आंदोलन की भूमिका भी है, जो अफगानिस्तान के तालिबानी उभार की पृष्ठभूमि में चला था। पाकिस्तानी राजनीति के केन्द्र में कश्मीर है। भारतीय राजनीति के केन्द्र में भी कश्मीर को होना चाहिए था, क्योंकि भारतीय धर्मनिरपेक्षता की सफलता तभी है जब हमारे बीच मुस्लिम बहुमत वाला कश्मीर राज्य हो। परिस्थितियाँ ऐसी रहीं कि कश्मीर स्वतंत्र देश के रूप में खड़ा नहीं हो पाया। पर जेएनयू प्रकरण का कश्मीरी सवाल से वास्ता नहीं है। वहाँ कश्मीर समस्या को लेकर बहस नहीं है, बल्कि खुलकर मुख्य धारा की राजनीति हो रही है। ऐसा ही हैदराबाद में हुआ, जहाँ असली सवाल पीछे रह गया।

सवाल है कश्मीर में हिंसा की शुरुआत किसने की? जो लोग पाकिस्तान-परस्त बातें करते हैं उनसे पूछा जाना चाहिए कि क्या उन्होंने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव को पढ़ा है, जिसकी बिना पर आजादी बातें कही जा रही हैं? क्या पाकिस्तान कश्मीर की आजादी के आंदोलन को बढ़ावा दे रहा है? जी नहीं वह उसे हड़पना चाहता है। हम कश्मीर की आजादी से जुड़े विचारों की अभिव्यक्ति को स्वीकार करते हैं। इसलिए किसी गोष्ठी या सभा में कश्मीरी प्रतिरोध की बातें सुनकर घबराना नहीं चाहिए। पर भारतीय राजनीति इन दिनों जिस तरीके से कश्मीर पर विमर्श चला रही है वह घबराहट पैदा करता है। यह सीधे-सीधे राजनीतिक दलों से जुड़े छात्र संगठनों की लड़ाई है।

भारतीय राष्ट्र राज्य तमाम तरह के अंतर्विरोधों के बीच विकसित हो रहा है। एक तरफ हम परस्पर विरोधी राजनीतिक धारणाओं के टकराव को देख रहे हैं, वहीं राष्ट्रवाद, मानवाधिकार और राष्ट्रीय सुरक्षा के सवाल हैं। पिछले कुछ महीनों में इन सवालों को लेकर टकराव बढ़ा है। ताजा उदाहरण है जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय और दिल्ली के प्रेस क्लरब में हुए कार्यक्रम जिनमें भारत विरोधी और आतंकवादियों के समर्थन में नारे लगाए गए। इस सिलसिले में कुछ गिरतारियाँ हुई हैं। यह मामला दूर तक और सम्भवतः देश की सबसे ऊँची अदालत तक जाएगा। यह विमर्श कम से कम तीन अलग-अलग सतहों पर है। पहला है सामान्य नागरिक

की भावनाएं। दूसरे इस मसले के सांविधानिक पहलू और तीसरे इसका राजनीतिक निहितार्थ।

हैरत की बात है कि कोई हमारे सामने देश-विरोधी नारे लगाए और फिर सीनाजोरी करे। वह भी तब जब हाल में पठानकोट पर आतंकी हमला हो चुका है। क्या यह हमारे संयम की परीक्षा है? कश्मीर हमारी भावनाओं से जुड़ा सवाल है। जिस आतंकवाद को लेकर पूरा देश परेशान है, वह पाकिस्तान की 'कश्मीर नीति' की उपज है। कश्मीर की 'आजादी' शब्द भ्रामक है। इसका नारा लगाने वालों का सीधा मतलब है पाकिस्तान के हवाले करो। असली नारा है, 'कश्मीर बनेगा पाकिस्तान।' यह अवधारणा साम्प्रदायिक आधार पर है, धर्मनिरपेक्ष सिद्धांत पर नहीं। इसमें घाटी के पंडित, जम्मू के डोगरे और लद्दाख के बौद्ध शामिल नहीं हैं।

कश्मीर की हिंसा और आतंक के पीछे एक इतिहास है। सन १९४७ में पाकिस्तान की फौज ने गैर-कश्मीरी कबायलियों के हुजूम के साथ कश्मीर पर हमला बोला था। उसके बाद १९६५ में बाकायदा योजनाबद्ध तरीके के दूसरा हमला बोला। फिर १९९९ में करगिल-कांड हुआ। फिर भी कुछ लोग यदि कश्मीर की 'आजादी' को लेकर अलग राय रखते हैं तो उसे देश-द्रोह कहना तब तक ठीक नहीं, जब तक उसके तौर-तरीके गैर-कानूनी न हों। दूसरी बात धारा १२४ ए और १२० बी के दुरुपयोग को लेकर आजादी के पहले से बहस है। महात्मा गांधी इसके खिलाफ थे। आजादी के बाद भी इसका कई मौकों पर दुरुपयोग हुआ। इसलिए बेहतर हो कि हम देश की सर्वोच्च अदालत में इस मामले को जाने दें। या फिर संसद के आगामी सत्र में इस मसले पर विचार-विमर्श करें।

यह मामला जेएनयू से उठा जरूर है, पर मूलतः इसके पीछे केन्द्र-विरोधी राजनीतिक ताकतें हैं। असहिष्णुता को लेकर शुरू हुई बहस भी इससे जुड़ी है। हाल में डेविड हेडली की गवाही और इशरत जहाँ मामले के तार भी इससे जुड़े हैं। डेविड हेडली जो भी जानकारी दे रहा है, वह पाकिस्तान में बैठे आतंकी गठबंधन पर रोशनी डालते हैं। वह सही कह रहा है या गलत, बात इसपर होनी चाहिए। उसने इशरत जहाँ का नाम क्यों लिया है वगैरह? यह मसला राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़ा है।

पड़ताल इस बात की होनी चाहिए कि जेएनयू में नारेबाजी अनायास हो गई या किसी ने मौके का फायदा उठाया? अफजल गुरु और मकबूल बट के मामलों को इसके साथ किसने जोड़ा? इस कार्यक्रम को पहले अनुमति क्यों मिली, फिर वह रद्द क्यों हुई? अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद की इसमें क्या भूमिका है? क्या यह जेएनयू में वाम पंथी दलों के वर्चस्व को तोड़ने की मुहिम है? और यह भी कि जेएनयू में वाम-गठजोड़ की अकादमिक भूमिका क्या है? इन बातों पर ठंडे माहौल में भी विचार-विमर्श हो सकता है। तब हम इस पर भी विचार कर सकते हैं कि अफजल गुरु को हुई फाँसी के पीछे के हालात क्या थे।

जेएनयू-कार्यक्रम के आयोजकों का कहना है कि उन्हें अभिव्यक्ति के सांविधानिक अधिकार के तहत अपनी बात कहने का हक है। हाल में हैदराबाद विश्वविद्यालय के छात्र रोहित वेमुला की आत्महत्या के बाद वामपंथी दल भारतीय जनता पार्टी की छात्र शाखा विद्यार्थी परिषद को निशाना बना रहे हैं। पर यह मामला केवल छात्र राजनीति का नहीं है। कश्मीर का सवाल है

तो उसका देश-विरोधी नारेबाजी से मेल कैसे होगा? कश्मीर का वैधानिक तरीके से भारतीय राष्ट्र राज्य में विलय हुआ है और हमने उसकी रक्षा में तीन बड़ी लड़ाइयां लड़ी हैं। उसे तश्तरी में रखकर पाकिस्तान को नहीं देंगे।

दूसरी ओर कुछ लोगों की नारेबाजी हमसे कश्मीर नहीं छीन लेगी। इसका केवल भावनात्मक अर्थ है। या फिर यह कि विश्वविद्यालयों का इस्तेमाल संकीर्ण राजनीति के लिए होने लगा है। तीसरा सवाल धारा 928ए और 920बी के इस्तेमाल से जुड़ा है। सन 2092 में कार्टूनिस्ट असीम त्रिवेदी की गिरफ्तारी के बाद भी यह सवाल उठा था। उस वक्त यूपीए सरकार थी और आज के सत्ताधारी विपक्ष में थे। विडंबना है कि उसी दौरान तमिलनाडु में कुडानकुलम में नाभिकीय बिजलीघर लगाने के विरोध में आंदोलन चला रहे लोगों के खिलाफ देशद्रोह के आरोप लगाए थे। राहुल गांधी को अब अपनी बात कहने के पहले पुराने दस्तावेज भी देखने चाहिए।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शासन के प्रति विरोध और विद्रोह में काफी महीन रेखा है। संविधान में मूलतः कोई सीमा रेखा नहीं थी। संशोधन के मार्फत संविधान में युक्तिसंगत पाबंदियाँ लगाने का प्रावधान बाद में शामिल किया गया। विचार-विनिमय की स्वतंत्रता लोकतंत्र का सबसे महत्वपूर्ण कारक है। विडंबना है कि मानवाधिकार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की जरूरत एक ओर धुर वामपंथी कार्यकर्ता महसूस करते हैं वहीं सैयद अली शाह गिलानी और पाकिस्तान के हाफिज सईद जैसे नेता महसूस करते हैं, जिनका लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता में विश्वास नहीं है, पर हमारा है। यह अधिकार है तो व्यावहारिक रूप से लागू भी होगा।

कुछ साल पहले दिल्ली की एक सभा में अरुंधती रॉय ने कहा कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग कभी नहीं रहा। ऐसा उन्होंने पहली बार नहीं कहा। वे इसके पहले भी यह बात कह चुकी हैं। महत्वपूर्ण था उनका दिल्ली की एक सभा में ऐसा कहना। उस सभा में गिलानी भी बोले थे। उनके अलावा पूर्वोत्तर के कुछ राजनैतिक कार्यकर्ता इस सभा में थे। देश की राजधानी में भारतीय राष्ट्र राज्य के बारे में खुलकर ऐसी चर्चा ने बड़ी संख्या में लोगों को मर्माहत किया, सदमा पहुँचाया। उससे ज्यादा बड़ा सदमा जेएनयू प्रकरण से लगा है।

भारतीय दंड संहिता की धारा 929ए तथा 928ए के अंतर्गत देशद्रोह दंडनीय अपराध हैं। 928ए में उन गतिविधियों के तीन स्पष्टीकरण हैं, जिन्हें देशद्रोह माना जा सकता है। इन स्पष्टीकरणों के बाद भी केदारनाथ बनाम बिहार राज्य के मामले में 9662 में सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्ट किया कि जब तक सशस्त्र विद्रोह या हिंसा के इस्तेमाल की अपील न हो तब तक कुछ भी राजद्रोह नहीं है। मोटे तौर पर राष्ट्र-राज्य से असहमति को देशद्रोह नहीं मानना चाहिए। सवाल है कि जेएनयू में जो हुआ क्या केवल असहमति थी? देश विरोधी नारे लगाने वालों की सीनाजोरी भारतीय राष्ट्र राज्य के कमजोर होने की निशानी है या इस बात की निशानी कि लोकतांत्रिक व्यवस्था की ताकत हवा के ऐसे झोंकों को आसानी से कमजोर कर देती है? जवाब आपको देना है।

जेएनयू के बवाल पर सियासत

कें द्रीय गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने कहा कि नई दिल्ली के जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय (जेएनयू) में भारत विरोधी नारेबाजी से जुड़े घटनाक्रम को लश्कर-ए-तैयबा के संस्थापक हाफिज सईद का समर्थन प्राप्त है। गृह मंत्री ने यह वक्तव्य उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर ही दिया होगा। इस जानकारी के मद्देनजर उपरोक्त घटना की गंभीरता कहीं ज्यादा बढ़ जाती है। उपरोक्त नारेबाजी के सिलसिले में जेएनयू छात्र संघ के अध्यक्ष कन्हैया कुमार को गिरफ्तार किया जा चुका है। उन पर देशद्रोह का इल्जाम लगा है। कुछ अन्य छात्रों के भी हिरासत में लिए जाने की चर्चा है।

जेएनयू में भारत विरोधी नारेबाजी संसद पर हमले के दोषी अफजल गुरु की फांसी की बरसी पर हुए कार्यक्रम के दौरान हुई। अफजल की तीसरी बरसी पर कार्यक्रम कुछ छात्रों ने आयोजित किया। बताया गया कि वे एक धुर वामपंथी छात्र संगठन से जुड़े थे। कार्यक्रम को शद कंट्री विदाउट ए पोस्ट ऑफिस का नाम दिया गया था। उसके लिए लगे पोस्टर पर लिखा था, श्लोकतांत्रिक अधिकार-आत्मनिर्णय के लिए कश्मीरियों के संघर्ष के साथ एकजुटता में। यह भी लिखा था - शअफजल और मकबूल की न्यायिक हत्या के खिलाफ।

कन्हैया और जेएनयू छात्र संघ के दूसरे पदाधिकारी मौके पर मौजूद थे। संभवतः वे खुद नारेबाजी में शामिल नहीं थे। मगर उन्होंने उसे रोकने की कोशिश भी नहीं की। बाद में जरूर छात्र संघ के नेताओं ने उन नारों से खुद को अलग किया। कहा कि भारतीय राष्ट्र और संविधान में उनकी आस्था है। कन्हैया ने सफाई दी कि वामपंथी छात्र संगठन अभिव्यक्ति की आजादी और लोकतांत्रिक तरीके से विरोध जताने के अधिकार को छीनने के खिलाफ हैं, इसलिए उन्होंने प्रोग्राम का समर्थन किया।

किंतु यहां पर आकर यह सवाल जरूर खड़ा होता है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमा आखिर क्या है? अफजल और जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रंट के सह-संस्थापक मकबूल बट्ट को फांसी भारत की न्यायिक प्रक्रिया के तहत हुई। लोकतंत्र में न्यायिक फैसलों से असहमति रखने का हक जरूर होता है, लेकिन उस फैसले का उल्लंघन लोकतांत्रिक अधिकार के दायरे का उल्लंघन माना जाता है। मकबूल बट्ट कश्मीर को भारत से अलग करना चाहता था।

दरअसल, कश्मीर के संदर्भ में आत्मनिर्णय के अधिकार की वकालत का सीधा अर्थ पाकिस्तान संचालित वहां के अलगाववादी आंदोलन का समर्थन ही होता है। क्या कोई देश किसी गुट को खुलेआम अपनी अखंडता को चुनौती देने की इजाजत दे सकता है? जेएनयू में हुई नारेबाजी से भारतीय जनमानस आहत हुआ है। दरअसल, राष्ट्रीय अखंडता को चुनौती देकर उन छात्रों ने अपने खिलाफ वैधानिक कार्रवाई को खुद आमंत्रित किया। इसके बाद मुद्दा नारेबाजी करने वाले छात्रों की पहचान का बचता है। यह ठीक बात है कि उनकी गलती की सजा ऐसे छात्रों को नहीं दी जानी चाहिए, जिनकी नारेबाजी में भूमिका नहीं थी। इसीलिए असली सवाल दोषियों की पहचान का है। जरूरत घटना की निष्पक्ष जांच की है, ताकि वास्तविक दोषियों को दंडित किया जा सके।



पथ से भटका वामपंथ

- अभिनव प्रकाश

श के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय जेएनयू में हुए भारत विरोधी प्रदर्शन पर विवाद दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। कोई इसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मुद्दा बता रहा है तो कोई इसे राष्ट्रद्रोह की श्रेणी में रख रहा है। हालांकि इसमें दो राय नहीं हो सकती कि नौ फरवरी को लगाए गए नारे निंदनीय और अस्वीकार्य हैं, लेकिन छात्र संघ के अध्यक्ष के खिलाफ देशद्रोह का मामला कितना जायज है, इसका निर्णय करने का अधिकार सिर्फ न्यायपालिका का है, न कि मीडिया का या फिर स्वघोषित 'देशभक्तों' की भीड़ का। इसके अलावा संपूर्ण विश्वविद्यालय को देशद्रोहियों के गढ़ के रूप में देखना भी गलत है। इस विश्वविद्यालय ने न सिर्फ विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट योगदान दिया है, बल्कि आज के विदेश सचिव से लेकर मौजूदा सरकार के कई मंत्री भी इसके छात्र रहे हैं। यह सच है कि इससे सभी राजनीतिक पार्टियों और विचारधाराओं के लोग निकले हैं, लेकिन इसमें शुरुआत से वामपंथ का ही वर्चस्व रहा है। और इसमें जो कुछ भी हुआ उसे इसी परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश करनी होगी। सारे शोर-शराबे में यह महत्वपूर्ण सवाल नजरअंदाज हो रहा है कि आखिरकार मुख्यधारा की वामपंथी पार्टी के छात्र संगठन का कन्हैया कुमार कश्मीर के इस्लामी अलगाववाद के साथ क्यों खड़ा दिखाई दिया? और वह कौन-सी मजबूरी थी कि इस प्रकार की नारेबाजी का विरोध करने के बजाय सभी लेफ्ट पार्टियों के संगठन इसे स्वीकार्यता दे रहे थे और विरोध करने वाले छात्रों का ही विरोध कर रहे थे? दरअसल हकीकत यह है कि आज के समय में वामपंथ पतनगामी हो गया है।

वर्ग संघर्ष और आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था के विश्लेषण पर आधारित वामपंथ को आज यह समझ में ही नहीं आ रहा है की गूगल जैसी कंपनियां कैसे बिना कोई प्रत्यक्ष उत्पादन किए अरबों बना रही हैं या फिर टेस्ला जैसे अहटोमेशन का पूंजी और श्रमिकों के रिश्ते पर किस प्रकार का असर पड़ने वाले हैं। बिना किसी नए सिद्धांत या समझ के वामदल अपनी पुरानी और बेअसर हो चली राजनीति को नई दिशा देने में असफल रहे हैं और अराजकतावाद की तरफ बढ़ रहे हैं। सैद्धांतिक भ्रम की स्थिति उसे उन मुद्दों की तरफ धकेल रही है जो उसके कभी रहे नहीं। इसलिए हम देखते हैं कि किस प्रकार दक्षिणपंथ का विरोध करने वाला लेफ्ट कभी इस्लामी दक्षिणपंथ के साथ खड़ा नजर आता है तो कभी अपने साम्राज्यवाद विरोध को भुलाकर भारत में पश्चिमी हस्तक्षेप की वकालत करता नजर आता है। लेफ्ट की अपने खुद के मुद्दे निर्धारित करने की क्षमता खत्म होती जा रही है।

तभी वामपंथ के अंदर अल्ट्रा लेफ्ट और अराजकतावादी प्रचलन बढ़ा है, जो इसे प्रतिगामी मुद्दों की तरफ धकेल रहा है। इसीलिए चाहे मजहबी अलगाववाद हो या जातिवाद की समस्या, दोनों को नस्लवादी सांचे में ढालकर और भी विध्वंसक बनाने के प्रयास के समर्थन में वामपंथी दल खड़े दिखाई देते हैं। उनका सारा एजेंडा सिर्फ मोदी सरकार के प्रति प्रतिक्रियावादी बनकर

रह गया है। इसमें जहां राजनीति मुद्दों और बहस पर आधारित होती है वहां यह समस्या और भी गंभीर हो जाती है। यही कारण है कि बीते कई वर्षों से लेफ्ट राजनीति अपनी चमक खो रही है, लेकिन लेफ्ट की जगह कोई वैकल्पिक विचारधारा लेने में असफल रही है। इसके बजाय उग्र-वामपंथी और अराजकतावादी संगठन इसकी जगह ले रहे हैं। इसके कारण गत कई वर्षों में इसमें कभी कश्मीर की आजादी तो कभी दंतेवाड़ा में सीआरपीएफ के जवानों की मौत का जश्न तो कभी भारतीय ध्वज को पैरों तले रौंदे जाने की घटनाएं होने लगी हैं। मुख्यधारा के वामदल या तो इन सब घटनाओं पर मूकदर्शक बनकर देखते रहते हैं या फिर उस पर राजनीति करने की कोशिश करते हैं। आज की तारीख में वामपंथी दल अराजकतावाद की लहर की सवारी करके खुद को जीवित रखने की दुर्भाग्यपूर्ण नीति पर चल पड़े हैं। 9 नौ फरवरी को भी यही हुआ। माओवादी छात्र संगठन के उमर खालिद ने कश्मीरी अलगाववादियों के साथ मिलकर अफजल गुरु की फांसी का विरोध करने के लिए एक 'सांस्कृतिक' संध्या का आयोजन किया। जब प्रशासन को असली मकसद का पता चला तो उसने इजाजत रद्द कर दी, लेकिन आयोजकों ने फिर भी कार्यक्रम को करना चाहा और आपत्तिजनक नारेबाजी शुरू कर दी जिसमें उन्हें वामपंथी दलों के कई कार्यकर्ताओं का भी समर्थन हासिल था, लेकिन जब कुछ अन्य छात्रों ने इसके विरोध में नारेबाजी की तो सारी लेफ्ट पार्टियों ने भारत की बर्बादी के नारे लगाने वाले समूह के साथ मिलकर उनके खिलाफ नारेबाजी शुरू कर दी, जिसके वीडियो भी मौजूद हैं। स्थिति बिगड़ती देखकर पुलिस बुलाई गई और उसके बाद का घटनाक्रम जगजाहिर है।

यहां पर ध्यान देना जरूरी है कि अफजल गुरु के समर्थन और कश्मीर की आजादी के नारे बीते कई गत वर्षों से लग रहे हैं, लेकिन शिकायतों के बावजूद भी प्रशासन या पुलिस ने कभी कोई कार्रवाई नहीं की और आयोजकों का दुस्साहस बढ़ते-बढ़ते यहां तक आ पहुंचा कि भारत के खिलाफ जंग का खुला ऐलान होने लगा। लेफ्ट पार्टियां खुद को दूसरे से अधिक असली क्रांतिकारी साबित करने के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता या स्वनिर्णय के अधिकार के नाम पर इसे अंतिम समय तक संरक्षण प्रदान करती रहीं और उन्हें पता भी नहीं चला कि वे किसी और का खेल खेल रही हैं। 9 यह घटना पूरे विश्वविद्यालय और देश के लिए चिंताजनक तो है ही, परंतु इससे भी सबसे अधिक आत्मविश्लेषण और पथ सुधार की आवश्यकता लेफ्ट पार्टियों को है। इस घटना को सारे देश ने देखा है और उन्हें बात का अहसास होना चाहिए कि इस गैर जिम्मेदाराना राजनीति से जनता में कितना गुस्सा है और इसका खामियाजा जेएनयू के आम छात्रों को भुगतना पड़ रहा है। उन्हें यह समझना होगा कि यह मामला सरकार का नहीं, बल्कि राज्य का है, जिसकी संप्रभुता और अखंडता पर अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर सवाल खड़े किए जा रहे हैं।

यह न तो संविधान सम्मत है और न ही देश की जनता को स्वीकार्य। सरकार को भी चाहिए कि ऐसी घटनाओं को सख्ती से रोके, परंतु कार्रवाई की तपिश से विश्वविद्यालयों और आम छात्रों को सुरक्षित रखे, क्योंकि बिना छात्रों और शिक्षकों के सहयोग के इन तत्वों से शिक्षण संस्थानों को सुरक्षित रख पाना संभव नहीं है। देश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय जेएनयू में हुए भारत विरोधी प्रदर्शन पर विवाद दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। कोई इसे अभिव्यक्ति

की स्वतंत्रता का मुद्दा बता रहा है तो कोई इसे राष्ट्रद्रोह की श्रेणी में रख रहा है। हालांकि इसमें दो राय नहीं हो सकती कि नौ फरवरी को लगाए गए नारे निंदनीय और अस्वीकार्य हैं, लेकिन छात्र संघ के अध्यक्ष के खिलाफ देशद्रोह का मामला कितना जायज है, इसका निर्णय करने का अधिकार सिर्फ न्यायपालिका का है, न कि मीडिया का या फिर स्वघोषित 'देशभक्तों' की भीड़ का। इसके अलावा संपूर्ण विश्वविद्यालय को देशद्रोहियों के गढ़ के रूप में देखना भी गलत है। इस विश्वविद्यालय ने न सिर्फ विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट योगदान दिया है, बल्कि आज के विदेश सचिव से लेकर मौजूदा सरकार के कई मंत्री भी इसके छात्र रहे हैं। यह सच है कि इससे सभी राजनीतिक पार्टियों और विचारधाराओं के लोग निकले हैं, लेकिन इसमें शुरुआत से वामपंथ का ही वर्चस्व रहा है। और इसमें जो कुछ भी हुआ उसे इसी परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश करनी होगी।

सारे शोर-शराबे में यह महत्वपूर्ण सवाल नजरअंदाज हो रहा है कि आखिरकार मुख्यधारा की वामपंथी पार्टी के छात्र संगठन का कन्हैया कुमार कश्मीर के इस्लामी अलगाववाद के साथ क्यों खड़ा दिखाई दिया? और वह कौन-सी मजबूरी थी कि इस प्रकार की नारेबाजी का विरोध करने के बजाय सभी लेफ्ट पार्टियों के संगठन इसे स्वीकार्यता दे रहे थे और विरोध करने वाले छात्रों का ही विरोध कर रहे थे? दरअसल हकीकत यह है कि आज के समय में वामपंथ पतनगामी हो गया है। वर्ग संघर्ष और आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था के विश्लेषण पर आधारित वामपंथ को आज यह समझ में ही नहीं आ रहा है की गूगल जैसी कंपनियां कैसे बिना कोई प्रत्यक्ष उत्पादन किए अरबों बना रही हैं या फिर टेस्ला जैसे अहटोमेशन का पूंजी और श्रमिकों के रिश्ते पर किस प्रकार का असर पड़ने वाले हैं। बिना किसी नए सिद्धांत या समझ के वामदल अपनी पुरानी और बेअसर हो चली राजनीति को नई दिशा देने में असफल रहे हैं और अराजकतावाद की तरफ बढ़ रहे हैं। सैद्धांतिक भ्रम की स्थिति उसे उन मुद्दों की तरफ धकेल रही है जो उसके कभी रहे नहीं।

इसलिए हम देखते हैं कि किस प्रकार दक्षिणपंथ का विरोध करने वाला लेफ्ट कभी इस्लामी दक्षिणपंथ के साथ खड़ा नजर आता है तो कभी अपने साम्राज्यवाद विरोध को भुलाकर भारत में पश्चिमी हस्तक्षेप की वकालत करता नजर आता है। लेफ्ट की अपने खुद के मुद्दे निर्धारित करने की क्षमता खत्म होती जा रही है। तभी वामपंथ के अंदर अल्ट्रा लेफ्ट और अराजकतावादी प्रचलन बढ़ा है, जो इसे प्रतिगामी मुद्दों की तरफ धकेल रहा है। इसीलिए चाहे मजहबी अलगाववाद हो या जातिवाद की समस्या, दोनों को नस्लवादी सांचे में ढालकर और भी विध्वंसक बनाने के प्रयास के समर्थन में वामपंथी दल खड़े दिखाई देते हैं। उनका सारा एजेंडा सिर्फ मोदी सरकार के प्रति प्रतिक्रियावादी बनकर रह गया है। इसमें जहां राजनीति मुद्दों और बहस पर आधारित होती है वहां यह समस्या और भी गंभीर हो जाती है। यही कारण है कि बीते कई वर्षों से लेफ्ट राजनीति अपनी चमक खो रही है, लेकिन लेफ्ट की जगह कोई वैकल्पिक विचारधारा लेने में असफल रही है।

इसके बजाय उग्र-वामपंथी और अराजकतावादी संगठन इसकी जगह ले रहे हैं। इसके कारण गत कई वर्षों में इसमें कभी कश्मीर की आजादी तो कभी दंतेवाड़ा में सीआरपीएफ के जवानों की मौत का जश्न तो कभी भारतीय ध्वज को पैरों तले रौंदे जाने की घटनाएं होने लगी

हैं। मुख्यधारा के वामदल या तो इन सब घटनाओं पर मूकदर्शक बनकर देखते रहते हैं या फिर उस पर राजनीति करने की कोशिश करते हैं। आज की तारीख में वामपंथी दल अराजकतावाद की लहर की सवारी करके खुद को जीवित रखने की दुर्भाग्यपूर्ण नीति पर चल पड़े हैं। 9 नौ फरवरी को भी यही हुआ। माओवादी छात्र संगठन के उमर खालिद ने कश्मीरी अलगाववादियों के साथ मिलकर अफजल गुरु की फांसी का विरोध करने के लिए एक 'सांस्कृतिक' संध्या का आयोजन किया। जब प्रशासन को असली मकसद का पता चला तो उसने इजाजत रद्द कर दी, लेकिन आयोजकों ने फिर भी कार्यक्रम को करना चाहा और आपत्तिजनक नारेबाजी शुरू कर दी जिसमें उन्हें वामपंथी दलों के कई कार्यकर्ताओं का भी समर्थन हासिल था, लेकिन जब कुछ अन्य छात्रों ने इसके विरोध में नारेबाजी की तो सारी लेफ्ट पार्टियों ने भारत की बर्बादी के नारे लगाने वाले समूह के साथ मिलकर उनके खिलाफ नारेबाजी शुरू कर दी, जिसके वीडियो भी मौजूद हैं।

स्थिति बिगड़ती देखकर पुलिस बुलाई गई और उसके बाद का घटनाक्रम जगजाहिर है। यहां पर ध्यान देना जरूरी है कि अफजल गुरु के समर्थन और कश्मीर की आजादी के नारे बीते कई गत वर्षों से लग रहे हैं, लेकिन शिकायतों के बावजूद भी प्रशासन या पुलिस ने कभी कोई कार्रवाई नहीं की और आयोजकों का दुस्साहस बढ़ते-बढ़ते यहां तक आ पहुंचा कि भारत के खिलाफ जंग का खुला ऐलान होने लगा। लेफ्ट पार्टियां खुद को दूसरे से अधिक असली क्रांतिकारी साबित करने के लिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता या स्वनिर्णय के अधिकार के नाम पर इसे अंतिम समय तक संरक्षण प्रदान करती रहीं और उन्हें पता भी नहीं चला कि वे किसी और का खेल खेल रही हैं। 9 यह घटना पूरे विश्वविद्यालय और देश के लिए चिंताजनक तो है ही, परंतु इससे भी सबसे अधिक आत्मविश्लेषण और पथ सुधार की आवश्यकता लेफ्ट पार्टियों को है। इस घटना को सारे देश ने देखा है और उन्हें बात का अहसास होना चाहिए कि इस गैर जिम्मेदाराना राजनीति से जनता में कितना गुस्सा है और इसका खामियाजा जेएनयू के आम छात्रों को भुगतना पड़ रहा है। उन्हें यह समझना होगा कि यह मामला सरकार का नहीं, बल्कि राज्य का है, जिसकी संप्रभुता और अखंडता पर अभिव्यक्ति की आजादी के नाम पर सवाल खड़े किए जा रहे हैं। यह न तो संविधान सम्मत है और न ही देश की जनता को स्वीकार्य। सरकार को भी चाहिए कि ऐसी घटनाओं को सख्ती से रोके, परंतु कार्रवाई की तपिश से विश्वविद्यालयों और आम छात्रों को सुरक्षित रखे, क्योंकि बिना छात्रों और शिक्षकों के सहयोग के इन तत्वों से शिक्षण संस्थानों को सुरक्षित रख पाना संभव नहीं है।

○

Published in Pioneer, 17 Feb.

March of the anti-India brigade

– Anirban Ganguly

The 'constitutional patriotism' oozing intellectuals and historians who have only tried to understand India either 'before' or 'after' Mahatma Gandhi, are consciously pushing forth agendas that aim to destabilise India and halt her march towards self-reliance

Those preaching 'constitutional patriotism' whatever that means have generally and always kept silent when the actual idea of India has been challenged, threatened and attacked. Having built careers in the sanitised confines of Ivy-league institutions and having survived on political doles thrown to them by patrons who expect to be shielded and eulogised for the stupidest or unkindest moves, these 'finest public intellectuals' live on obfuscation, intellectual subterfuge and hermeneutical dishonesty.

Those using their letter-power and hollow logic to 'support' the celebration of terrorists in the hallowed precincts of a leading educational institution in the country and thereby encourage the further replication of these acts across the land, those justifying the abuse of the constitutional institutions of the land and the incitement to violence against these institutions "Afzal, your killers are still at large" is not an innocent cry but a blood-thirsty howl to eliminate all those who work to uphold the unity and sovereignty of India also fall in the league of anti-nationals, anti-national intellectuals who owe allegiance not to the all-encompassing and inspiring idea of India but rather to themselves first, to India-haters next, to a section of their political patrons who have only the interest and welfare of a particular dynasty or family in mind, a welfare and benefit to be accrued at the cost of India, at the cost of her well-being, at the cost of the security of her millions of ordinary citizens.

Such an 'avant garde' intellectual action by these 'free-thinkers' has generated a peculiar spectacle where worshippers of Mao and Stalin - the two crudest genocidal leaders in the history of mankind and members of a family which, following Adolf Hitler, blacked out democracy in India in 1975 and allowed a mass-killer of Indians, Warren Anderson, to escape India with impunity after having committed his genocide, articulate definitions of

nationalism and patriotism. It was thus a hugely ironical spectacle to see comrade Sitaram Yechury, whose ideological ancestors had opposed India's freedom movement and were active in subverting that freedom once it was achieved. speak of freedom, free expression and democratic rights. Or was it ironical, comrade Yechury was just loyally following the footsteps of these ancestors of his by remaining true to his ideological indoctrination which has taught him to see India not as a nation but as a sub-continent where a ceaseless clash of class continues and which needs dismemberment at the first instance so that there could be 'true liberation'. Weren't the communists the ones who cried in 1947: "Ye azadi jhuta hai (this freedom is false)" and took up arms to oppose free India?

No column space or ink is spilled on asking a few fundamental questions; the Ivy-league and world-certified intellectuals are busy justifying why it is necessary to allow a group to create unrest and celebrate the 'martyrdom' of those elements who worked, in collusion with forces inimical to India, to wrack her apart. Ironically these intellectuals, many of whom have survived over the years on doles from the nodal Indian Council for Social Science Research, the Reserve Bank of India and other such 'hated state' institutions, have risen to support the breaking of India, "tukde tukde", the dissolution of India, the severance from India and freedom for Jammu & Kashmir the azadi that the JNU sloganeers demanded for Kashmir was the azadi as defined by the actions of "Maqbool, Afzal and Hurriyat" the first two terrorists who conspired to dismember India and the other a discredited self-styled people's front supported by Pakistan and dreaded terrorists outfits. Any sane and impartial observer would discern that the sloganeers have honed their skills elsewhere and where not the usual 'made in JNU' types who stick posters and take out marches in support of some far-off revolution.

The appeal to join the 'cultural evening' on February 9 in support of terrorists said, "We appeal to you to join a cultural evening in rage against the occupation of Kashmir by the Indian state, and in solidarity with the valiant struggle of the people of Kashmir for their inalienable right to self-determination." The appeal also cited with certain aplomb, "Comrade Charu Mazumdar" (CM), an ideological relic from a hoary past, and his call for dismembering India, "The slogan, 'Kashmir is an inalienable part of India', is given by the ruling class in the interest of plundering. No Marxist can support this slogan. It is the essential duty of Marxists to accept the right of self-determination by every nationality. On questions of Kashmir, Nagas etc, the Marxists should express their support

in favour of the fighters." Comrade Karat, comrade Sita and the hordes of Marxists thus, both, expelled and liberated, strove hard to stay true to the vision of 'CM' and have also accepted in that act that Kashmir was an 'occupied state'.

It was this evening that gradually manifested itself through slogans that demanded the not only the 'liberation' of Kashmir but also of Assam, 'Nagalim', Manipur and ,of all places, the Indian state of Kerala. In no other democratic nation, whose leading lights had toiled so hard to give the people a stellar Constitution, would one witness the vulture-like convergence of political leaders and Members of Parliament who have taken oath on the Constitution of India, in support of those who have essentially and unequivocally called for the dissolution of India. Thus comrades Yechury, Sudhakar Reddy, D Raja and that lost and confused scion of the Congress first family, himself a 'comrade' of sorts, Mr Rahul Gandhi under whose grandmother's premiership Maqbool was hanged and under whose party's rule later Afzal was tried and hanged had essentially converged to support the 'vision' of Charu Mazumdar and present-day terrorists whose sole objective is to see India broken and fragmented. For them nothing is sacrosanct in the Indian constitutional set-up, the Supreme Court of India which had passed the judgements least of all. No one asks, for example, how is it that parliament member and Communist Party of India leader D Raja's daughter was an active and leading part of a demonstration that called for India's destruction. Hasn't Mr Raja owed his allegiance to the Constitution while taking oath as member of Parliament? Or is that too a diversionary tactics for the adoption of revolutionary methods to dupe the Indian constitutional framework?The 'constitutional patriotism' oozing intellectuals and historians who have only tried to understand India either 'before' or 'after' Mahatma Gandhi, are consciously pushing forth agendas that aim to destabilise India and halt her march towards self-reliance. The argument for freedom of expression is just a smokescreen.

○

JNU row : Expose those who want *Bharat ki barbadi*

– Gaurav C Sawant

The prestigious Jawaharlal Nehru University (JNU) is in the headlines these days. Not because of cutting-edge research or any academic achievement, but because at the university some people were caught on camera chanting:

Bharat ki barbadi tak jung rahegi...

Kashmir ki azadi tak jung rahegi...

Afzal ke armano ko manzil tak le jayenge...

Bandook ke bal par.. azadi..

Afzal hum sharminda hain, tere qatil zinda hain...

And so on.

Kanhaiya Kumar, the president of JNU Students Union was taken into custody and has been charged with sedition. A court will decide whether the police have evidence to prove this charge, but the images from JNU have raised some disturbing questions.

One of the organisers of the "cultural event" at JNU on February 9 was Umar Khalid, a research scholar. He is learnt to be a part of the Democratic Students Union and has been quoted as saying: "I am against the occupation of Kashmir by the Indian state. I want to make it apparent I am not from Kashmir but believe what is happening in Kashmir is Indian occupation of Kashmir." So who are these people who are ranting about "bharat ki barbadi" (destruction of India) sitting in the heart of the national capital. And who are the people encouraging young scholars to focus more on "Afzal ke arman" (wishes of Afzal Guru..to attack temple of democracy) than their own "parents ke arman" (wishes of their parents) of good education.

Two issues here. Kanhaiya Kumar says his fight is against poverty, price rise and unemployment. Another protesting scholar spoke of struggle against rising sexual crimes against women and lower castes. The fight is against communal forces and riots. That is very noble and more power to the scholars.

My question is how is this achieved by chanting Bharat ki barbadi tak jung rahegi? Also does ranting "bharat ki barbadi tak jung rahegi" come in the category of freedom of speech and expression? When we pay taxes and those taxes also subsidise education including of those who shout Afzal ke armano ko manzil tak le jayenge - do I, as a tax-paying citizen, have a right to ask questions?

That said, the assault on Kanhaiya Kumar, his supporters and journalists in the Patiala House courts is disgusting.

The police should identify all those involved in it and take the strictest possible action against them. The police should also explain how could this happen twice. This gives those defending the likes of Umar Khalid a chance to deflect the issue from anti-India slogans at JNU to the unpardonable actions at the Patiala House court. Lawyers of all the people should know they should file a petition in court against the anti-national rants at JNU or at Jadavpur university or as intelligence reports indicate trouble being fomented in 18 other universities.

Did the police act in haste? Delhi Police putting out the so-called Hafiz Mohammed Saeed tweet, duly reported by yours truly both on Twitter and anchored on air - does raise questions. On what basis did the Delhi Police say forces hostile to India - including the likes of Hafiz Saeed could try and take advantage of the trouble on the campus? It is a fact that the Jamat-ud-Dawa has been carrying out a series of social media initiatives across Pakistan.

But is there anything to indicate they are trying to fish in troubled waters in India? Both the Delhi police commissioner BS Bassi and the union home minister Rajnath Singh seem to think so. While we must all condemn the attack on journalists and on Kanhaiya Kumar and his supporters, we must also equally seek action against those who rant against India (Bharat ki barbadi tak jung rahegi) at JNU and other universities. BJP MLA OP Sharma's attack on a CPI student leader is unacceptable and legal action should be taken against the MLA. It is also just what the doctor ordered for those who want to deflect attention from anti-India chants at the university.

Sedition or not courts will decide - but so-called scholars who want Bharat-ki-barbadi in my opinion do not deserve tax payers-funded scholarships, university grants, hostels and government jobs. My taxes are for India's growth not for Bharat-ki-barbadi. I also have a bone to pick with those who are desperately trying to turn nationalism into a cuss word. It is a spirit that must be inculcated in every Indian. A feeling of pride for India is a very good thing

and must be encouraged.

The people who beat up journalists, Kanhaiya Kumar and his supporters are playing right into the hands of those who want to rant 'Bharat ki barbadi tak jung rahegi' in the garb of free speech and free thought.

Goonda-ism is not nationalism. Expose these goondas. Jail them. But also jail those who ask for Bharat-ki-barbadi. A spark neglected burns the house. Unless the mess at JNU is not sorted out effectively, the fire could well spread to other universities and damage the nation.

Expose those who indulge in dirty politics on the issue - nationalism is not a cuss word. It should never be allowed to become one.

○



JNU: Leftist's always had an anti-national character

– Rashmi Das

Traditionally, JNU has had a dislike of India. No proselytising missionary in the imperial age could have hated a heathen with such ferocity as the Left intellectual of JNU hates India and her place at the global high table. Thus, the Left on the campus has few pet intellectual targets: First, government of India. Any government, (barring the left front governments in states) is the bad brutal Indian state and a fit case for disaffection.

Second, India, since it is predominantly Hindu, it has to be painted in pitiable terms. Third, Indian industry, they are crooks and criminals. That's why reforms have to be stalled. Poverty is glorious. Fourth, there is no such thing as nationalism; it is a jingoistic, almost barbaric state of being. Disunity has to be promoted and the academia gives it magnificent terms: sub-nationalism, self-determination, peoples' movement and the kindred political jargons. The object is clear: Propound theories to destruct India and make them fashionable.

This is a thread of academic behaviour that runs through social sciences, international relations and even the sciences. All those freedom of expression wallahs, (both students and faculty), who berate and stigmatise the Akhil Bhartiya Vidyarthi Parishad (ABVP) on a daily basis, just think back to your past and present conduct. When ABVP swept the JNU Students' Union election in 1996-97, the SFI, AISA, DSU and leftist organizations of all hues, took out retaliatory processions heaping abuses on us and threatened wreckage of the functioning of the Students' Union. Was that democratic conduct? That year, when Professor Vasant Gedre wanted to invite LK Advani to the campus for the launch of a Spanish grammar book that he had written, the leftist ultras went ballistic with their language of militant gheraos, bandhs and massive disruption. Finally the programme had to be held in JNU City Centre in Connaught Place to avoid a situation of violence on campus. Such is the face of red terror on campus, the "Jala do, Mita do" brigades. To be an ABVP activist on JNU campus was to suffer the racism of the worst sort. ABVP activists were spat upon, academically victimised, boycotted and jeered at, in hostel messes. We, the ABVP activists, were the Shudras of the university caste system.

But the Shudras have risen. You cannot plot and campaign for dividing and destroying India and then claim immunity in the name of freedom of speech and expression. The seditious meeting and procession that was organised in JNU on February 9, 2016 is fit for the harshest punishment. The arrest of the JNUSU President, Kanhaiya Kumar was most deserving. He knew these insidious anti-India elements were on the campus; instead of alerting the JNU administration, he facilitated these characters.

The Left student's movement may think that raising slogans pledging India's dismemberment and destruction is as hip as having tequila shots in a rock concert, it is not. It is a serious law and order issue with severe consequences. The university cannot claim autonomy from the processes of law. No Indian, whether individual or institution can.



Dr. Syama Prasad Mookerjee Research Foundation



<https://web.facebook.com/spmrfoundation>



<https://twitter.com/spmrfoundation>